संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

॥ ऋषि प्रसाद ॥

वर्ष : १३
अंक : ११५
जुलाई २००२
आषाढ मास
विक्रम.सं. २०५९

हिन्दी

जुट चुके जो गुरुसेवा में निष्ठा और लगन से । भीतर बाहर उनको बचाते गुरुदेव हर विघ्न से ॥
गुरुदेव के दैवीकार्य में जो शिष्य डट जाते हैं । मिलती उनको गुरुकृपा, दुःख के पहाड़ हट जाते हैं ॥

गुरु वशिष्ठजी के श्रीचरणों में भगवान श्रीरामचंद्रजी ।

गुरुदेव के लिए शेरनी से दूध की याचना करते शिवाजी ।

मुनि विश्वामित्र के श्रीचरणों में श्रीराम और लक्ष्मण ।

शुकदेवजी के श्रीचरणों में राजा परीक्षित ।

सांदीपनि ऋषि के श्रीचरणों में भगवान श्रीकृष्ण ।

संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

॥ ऋषि प्रसाद ॥

वर्ष : १३
अंक : ११५
जुलाई २००२
आषाढ मास
विक्रम.सं. २०५९

हिन्दी

जुट चुके जो गुरुसेवा में निष्ठा और लगन से । भीतर बाहर उनको बचाते गुरुदेव हर विघ्न से ॥
गुरुदेव के दैवीकार्य में जो शिष्य डट जाते हैं । मिलती उनको गुरुकृपा, दुःख के पहाड़ हट जाते हैं ॥

गुरु वशिष्ठजी के श्रीचरणों में भगवान श्रीरामचंद्रजी ।

गुरुदेव के लिए शेरनी से दूध की याचना करते शिवाजी ।

मुनि विश्वामित्र के श्रीचरणों में श्रीराम और लक्ष्मण ।
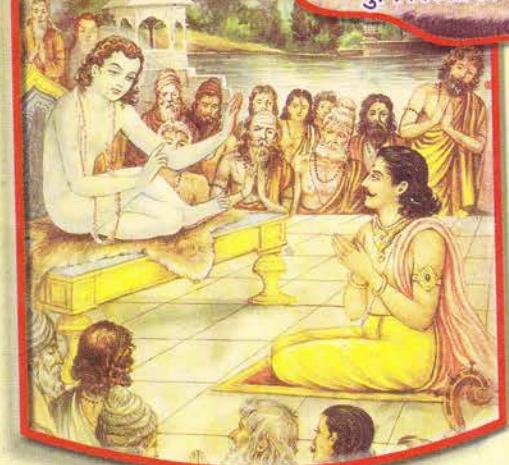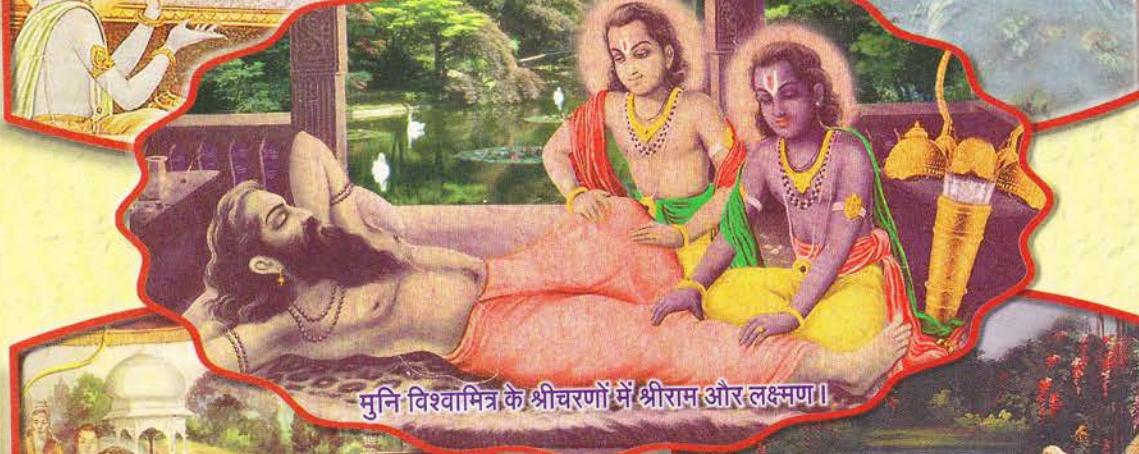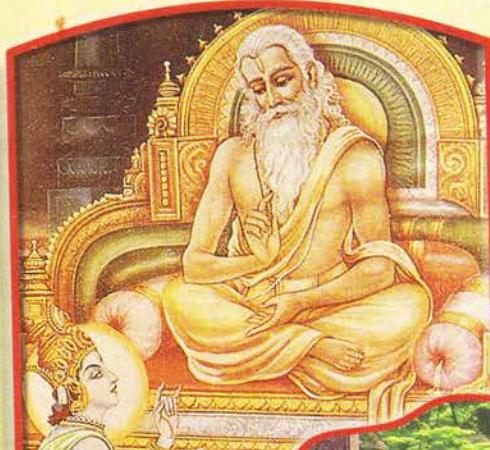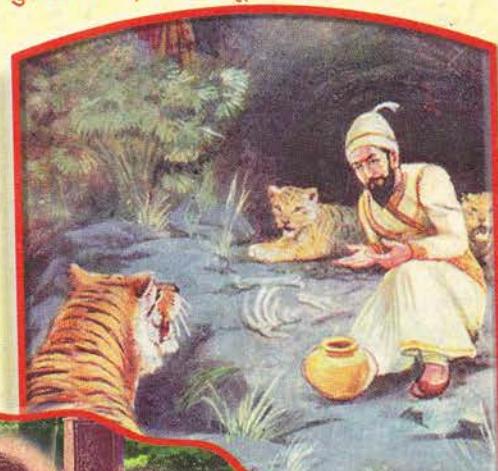
शुकदेवजी के श्रीचरणों में राजा परीक्षित ।
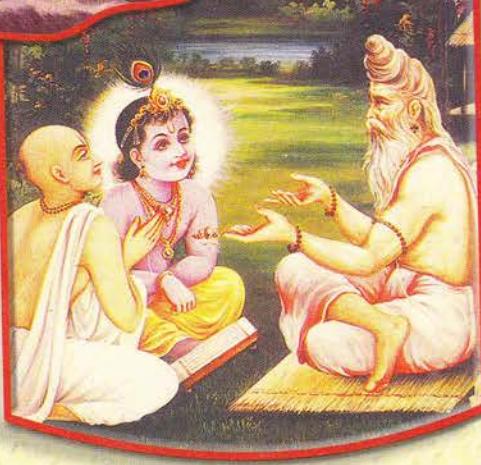
सांदीपनि ऋषि के श्रीचरणों में भगवान श्रीकृष्ण ।

जयपुर (राज.) में लाखों-लाखों सत्संगियों के साथ पूनम व्रतधारियों ने पाया परमात्म-आनंद का, आत्मानंद का अनोखा आनंद।
सब जगह भया ब्रह्म, सब तन-मन भया परमानंद। कहाँ गयी थकान, कहाँ गयी चिंता, कहाँ गया शोक !

॥ ऋषि प्रसाद ॥

वर्ष : १३
अंक : ११५
९ जुलाई २००२
आषाढ़ मास, विक्रम संवत् २०५९

सम्पादक : कौशिक वाणी
सहसम्पादक : प्रे. खो. मकवाणा

मूल्य : रु. ६-००

सदस्यता शुल्क

भारत में
(१) वार्षिक : रु. ५०/-
(२) पंचवार्षिक : रु. २००/-
(३) आजीवन : रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(१) वार्षिक : रु. ७५/-
(२) पंचवार्षिक : रु. ३००/-
(३) आजीवन : रु. ७५०/-

विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 20
(२) पंचवार्षिक : US $ 80
(३) आजीवन : US $ 200

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.
e-mail : ashramamd@ashram.org
web-site : www.ashram.org

प्रकाशक और मुद्रक : कौशिक वाणी
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती, अमदावाद-३८०००५ ने पारिजात प्रिन्टरी, राणीप, अमदावाद और विनय प्रिन्टिंग प्रेस, अमदावाद में छपाकर प्रकाशित किया।

Subject to Ahmedabad Jurisdiction

अनुक्रम

पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग

SONY चैनल पर 'संत आसारामवाणी' सोमवार से शुक्रवार सुबह ७.३० से ८ तथा शनिवार और रविवार सुबह ७.०० से ७.३०
संस्कार चैनल पर 'परम पूज्य लोकसंत श्री आसारामजी बापू की अमृतवर्षा' रोज दोप. २.०० से २.३० व रात्रि १०.०० से १०.३०

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक और स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

साधकों का पर्व : गुरुपूर्णिमा

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

कोई आदरणीय होते हैं, कोई माननीय होते हैं, कोई वंदनीय होते हैं, कोई श्रद्धेय होते हैं, कोई प्रशंसनीय होते हैं किंतु सत्यस्वरूप में जगानेवाले, तीनों तापों से बचानेवाले साक्षात् परब्रह्म-परमात्म-स्वरूप तत्त्ववेत्ता भगवान व्यास तो पूजनीय हैं। फिर चाहे भगवान लीलाशाह के रूप में व्यास हों, चाहे मुनि शुकदेवजी के रूप में व्यास हों, चाहे परमहंस रामकृष्ण के रूप में व्यास हों...। 'व्यास' किसी व्यक्ति का नाम नहीं है। 'व्यास' उनको कहते हैं जो हमारे जीवन की बिखरी हुई धाराओं को सुव्यवस्थित करें, हमारे अंदर छुपे हुए खजाने को खोलने की कुंजी हमें बतायें। हमको उठाने की आध्यात्मिक व्यवस्था जो जानते हैं वे आध्यात्मिक अनुभवसंपन्न महापुरुष व्यास हैं।

ऐसे व्यासस्वरूप संतों के, सद्गुरुओं के पूजन का दिवस ही - व्यासपूनम है, गुरुपूनम है।

गुरु तीन प्रकार के होते हैं :

(१) देवगुरु (२) सिद्धगुरु (३) मानवगुरु

देवगुरु-जैसे देवर्षि नारद हैं और बृहस्पतिजी हैं...। सिद्धगुरु कभी-कभी किसी परम पवित्र, परम सात्त्विक व्यक्ति को मार्गदर्शन देते हैं। जैसे, गुरु दत्तात्रेय...। परंतु मानवगुरु तो हमारे बीच रहते हुए, हमारे जैसे लिखते-पढ़ते, खाते-पीते, लेते-देते, हँसते-रोते यात्रा करते हैं। पग-पग पर विघ्न-बाधाओं को सहते हुए और उनका निराकरण करते हुए यात्रा करते हैं।

परम तत्त्व को पाये हुए वे मानवगुरु हमारे मन की सारी समस्याओं तथा हमारी बुद्धि की उलझनों को जानते हैं और उनके निराकरण की व्यवस्था को भी जानते हैं। यहाँ तक कि हम भी अपने मन को उतना नहीं जानते जितना मानवगुरु जानते हैं।

देवगुरु को प्रणाम है, सिद्धगुरु को भी प्रणाम है लेकिन मानवगुरु तो मानवजाति के परम हितैषी सिद्ध हुए हैं। उनको तो हम बार-बार प्रणाम करते हैं, उनका तो हम पूजन करते हैं।

ऐसे सद्गुरु के प्रति श्रद्धा होना मानव-जीवन की बहुत बड़ी उपलब्धि है।

जिसके जीवन में सद्गुरु के प्रति श्रद्धा नहीं है वह तो कंगाल है। चाहे उसके पास लाखों, करोड़ों, अरबों रुपये हों फिर भी वह कंगाल है। रावण के पास सोने की लंका थी फिर भी हम उसे धनवान नहीं कहेंगे कंगाल कहेंगे जबकि श्रीरामजी परम धनवान थे। क्योंकि त्रिभुवनपति होते हुए भी वे विश्वामित्रजी की पैरचंपी करते थे, गुरुवर वशिष्ठजी के आश्रम में सेवा करते थे। धन्य थी श्रीरामजी की गुरुभक्ति ! उनको मेरा बार-बार प्रणाम...

गुरु के पूजन का दिन है - गुरुपूनम, परन्तु गुरुपूजा क्या है ?

गुरु बनने से पहले गुरु के जीवन में भी कई उतार-चढ़ाव आये होंगे, अनेक अनुकूलता-प्रतिकूलताएँ आयी होंगी, उनको सहते हुए भी वे साधना में रत रहे और अंत में गुरुतत्त्व को पाने में सफल हुए। वैसे ही हम भी उनके संकेतों को पाकर उनके आदर्शों पर चलने का, ईश्वर के रास्ते पर चलने का दृढ़ संकल्प करके तदनुसार आचरण करें, तो यही बढ़िया गुरुपूजन होगा। हम भी अपने हृदय में गुरुतत्त्व को प्रगटाने के लिए तत्पर हो जायें- यही बढ़िया गुरुपूजा होगी।

जिनके जीवन में सद्गुरु का प्रकाश हुआ है वास्तव में उन्हींका जीवन जीवन है, बाकी सब तो मर ही रहे हैं। मरनेवाले शरीर को जीवन मानकर मौत की तरफ घसीटे जा रहे हैं। धनभागी तो वे हैं जिनको जीते-जी सद्गुरु मिल गये...

जिनको सद्गुरु का सान्निध्य मिल गया, आत्मारामी संतों का संग मिल गया, वे अपने को बड़भागी मानते हैं। अष्टावक्र महाराज को पाकर

जनकजी अपने को बड़भागी मानते हैं, वशिष्ठजी को पाकर श्रीरामचंद्रजी अपने को बड़भागी मानते हैं, गुरु सांदीपनिजी को पाकर श्रीकृष्ण-बलराम अपने को बड़भागी मानते हैं और गुरु गोविंदपादाचार्य को पाकर शंकराचार्यजी अपने को बड़भागी मानते हैं, शंकराचार्यजी को पाकर तोटक अपने को बड़भागी मानते हैं, श्री जनार्दन स्वामी को पाकर एकनाथजी अपने को बड़भागी मानते हैं और एकनाथजी को पाकर पूरणपोड़ा अपने को बड़भागी मानते हैं तो श्री समर्थ को पाकर शिवाजी अपने को बड़भागी मानते हैं। सुकरात का शिष्य कहे जाने में प्लेटो को आनंद आता है और प्लेटो का शिष्य कहलाने में अरस्तु गर्व का अनुभव करते हैं।

ऐसे शिष्यों के पास चाहे ऐहिक सुख-सुविधाओं के ढेर हों, चाहे अनेकों प्रतिकूलताएँ हों फिर भी वे सदा मुस्कराते हुए जीवन बिताते हैं, मुस्कराते हुए ईश्वर के रास्ते जाते हैं।

उत्तम साधक लांछन सहते हैं फिर भी धन्यवाद देते हैं, कभी फरियाद नहीं करते। मध्यम साधक फरियाद भी करते हैं और धन्यवाद भी देते हैं और कनिष्ठ साधक तर्क-कुतर्क करके गुरु को तौलते रहते हैं।

कनिष्ठ व्यक्ति को, श्रद्धाहीन को तो गुरु एक मनुष्य दिखते हैं, भगवान की मूर्ति पत्थर दिखती है और तीर्थ जलाशय दिखते हैं। परन्तु श्रद्धालु को जलाशय तीर्थरूप दिखता है, मूर्ति में भगवान दिखते हैं और गुरु साक्षात् परब्रह्म परमात्मा दिखते हैं।

गुरु और शिष्य के बीच जो दैवी सम्बन्ध होता है उसे दुनियादार क्या जानें ? सच्चे शिष्य सद्गुरु के चरणों में मिट जाते हैं और सच्चे सद्गुरु निगाहों से ही शिष्य के हृदय में बरस जाते हैं।

गुरुपूर्णिमा का पर्व गुरु के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने का पर्व है। शिष्य को गुरु से जो ज्ञान मिलता है वह शाश्वत होता है, उसके बदले में वह गुरु को क्या दे सकता है ? लेकिन वह कहीं कृतघ्न न हो जाय इसलिए अपने सद्गुरुदेव का मानसिक पूजन करके गुरुपूनम के निमित्त गुरुचरणों में शीश नवाते हुए प्रार्थना करता है :

'गुरुदेव ! हम आपको और तो क्या दे सकते हैं ? लेकिन इतनी प्रार्थना अवश्य करते हैं कि आपका स्वास्थ्य बढ़िया रहे, आपका आरोग्यधन बढ़ता रहे, आपका ज्ञानधन बढ़ता रहे, आपका प्रेमधन बढ़ता रहे, आपके परोपकार का यह भगीरथ कार्य और अधिक बढ़ता रहे और हमारे जैसे लोगों का कल्याण होता रहे...

गुरुदेव ! आपकी प्रसन्नता दिनोंदिन बढ़ती रहे, आपका सामर्थ्य अधिकाधिक बढ़ता रहे।

गुरुदेव ! आप हमारे अवगुणों की ओर न देखना... हम जैसे-तैसे हैं किन्तु आपके हैं... आपके वचनों में हमारी प्रीति बनी रहे... आप जैसा हमें सुख-दुःख, मान-अपमान, लाभ-हानि, यश-अपयश आदि में सम देखना चाहते हैं, आपका वह शुभ संकल्प शीघ्र फले...

गुरुदेव ! हम फूल नहीं तो फूल की पँखुड़ी ही आपके श्रीचरणों में अर्पित करते हैं, इसे स्वीकार करना...'

यह पर्व व्रत-उपवास का पर्व है, संयम-नियम का पर्व है और जीवन की शाम होने से पहले जीवनदाता को पाने का संकल्प करने का पर्व है।

आज के दिन केवल दूध अथवा फल पर ही रहें तो अच्छा है नहीं तो अल्पाहार कर लें। श्वासोच्छ्वास की गिनती करें और गुरुदेव के बताये गये उपदेशों का मनन करें।

जिन कारणों से तुम्हारी साधना में रुकावटें आती हैं, जिन विकारों के कारण तुम गिरते हो, जिस चिंतन तथा कर्म से तुम्हारा पतन होता है; उनको दूर करने के लिए प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व उठकर, स्नानादि से निवृत्त हो, पूर्वाभिमुख होकर आसन पर बैठ जायें। अपने इष्ट या गुरुदेव का स्मरण करके उनसे स्नेहपूर्वक मन-ही-मन बातें करें। बाद में १०-१५ गहरे श्वास लें और 'हरि ॐ' का गुंजन करते हुए अपनी दुर्बलताओं को मानसिक रूप से सामने लायें और ॐकार की पवित्र गदा से उन्हें कुचलते जायें।

अगर बार-बार बीमार पड़ते हो तो उन बीमारियों का चिंतन करके उनकी जड़ को भी 'ॐ' की गदा से तोड़ डालें। बाद में बाहर से थोड़ा-

बहुत उपचार करके उनकी डाली और पत्तों को भी नष्ट कर डालें। अगर काम-क्रोधादि मन की बीमारी है तो उन पर भी ॐकार की गदा का प्रहार करें।

इसमें असफल हो जायें तब भी डरें नहीं। बार-बार प्रयत्न करें, हजार बार प्रयत्न करें। जितना कुसंस्कार गहरा होता है उतना सुपुरुषार्थ ज्यादा चाहिए।

जो भाग्य के सहारे बैठा रहता है उसको तो रोना ही पड़ता है। आज का पुरुषार्थ ही कल का भाग्य बनता है, अतः पुरुषार्थ करो।

भले ही पहले के कर्म अच्छे हों लेकिन वर्त्तमान में पुरुषार्थ न हो और संग हलका हो तो पहले के भक्ति-ज्ञान के संस्कार दब जाते हैं। पहले के कर्म अच्छे हों और वर्त्तमान में भी पुरुषार्थ करे तो भक्ति-ज्ञान निखरने लगता है।

ज्यों-ज्यों भक्ति बढ़ती है, ज्ञान निखरता है, त्यों-त्यों मनुष्य सदाचारी बनता है। ज्यों-ज्यों मनुष्य सदाचारी बनता है, त्यों-त्यों भक्ति और ज्ञान पुष्ट होता है। भक्ति और ज्ञान पुष्ट होने पर साधक गुरुकृपा से सच्चिदानंदघन परमात्मा के अनुभव को पाने में भी कामयाब हो जाता है... परमात्मा का साक्षात्कार करने में सफल हो जाता है।

✽

व्यासपूर्णिमा

गुरुपूजन का दिवस आज है, व्यासपूर्णिमा आई है।
इसीलिए तो गुरुभक्तों ने, महफिल यहाँ जमाई है॥
ध्यान गुरु का निशदिन करते, आज दिवस कुछ न्यारा है।
प्यारे तो हैं सभी देव पर, सद्गुरु सबसे प्यारा है॥
कृपा करी गुरुदेव ने हम पर, अपने पास बुलाया है।
देकर दीक्षा हम भक्तों को, साधक हमें बनाया है॥
करना है उत्थान अगर तो, गुरु में प्रीत बढ़ाता जा।
माया की लिप्सा समेट कर, गुरुचरणों में आता जा॥
व्यासपूर्णिमा कर लो न्यारी, आज गुरु का भजन करो।
सद्गुरु हैं बरसाते किरपा, तुम चरणों में नमन करो॥
ब्रह्मरूप सद्गुरु हैं प्यारे, उनमें राम, कृष्ण, शिव हैं।
गुरुचरणों में हो जा अर्पण, सद्गुरु ही तेरे प्रिय हैं॥

- प्रेमनारायण मेहरोत्रा, लखनऊ (उ.प्र.).

वैदिक संदेश

✽ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✽

'अथर्ववेद' में आता है :

येन देवा वियन्ति नो च विद्विषते मिथः।
तत् क्रण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः॥

'जिसकी शक्ति से देवगण विपरीत विचारवाले नहीं होते हैं और परस्पर विद्वेष भी नहीं करते हैं, उस समान विचार को संपादित करनेवाले ज्ञान को हम आपके घर के मनुष्यों के लिए (जाग्रत या प्रयुक्त) करते हैं।'

ज्यायस्वन्तश्चित्तिनो मा वि यौर
मंराधयन्तः सधुराश्चरन्तः।
अन्यौ अन्यस्मै लल्गु वदन्त
एत सध्रीचीनान् वः समनसस्कृणोमि॥

'आप छोटे-बड़ों का ध्यान रखकर व्यवहार करते हुए, समान विचार रखते हुए तथा समान कार्य करते हुए पृथक् न हों। आप एक-दूसरे से प्रेमपूर्वक वार्तालाप करते हुए पधारें। हे मनुष्यो ! हम भी आपके समान कार्यों में प्रवृत्त होते हैं।'

(अथर्व. ३.३०.४-५)

वेद भगवान कहते हैं कि आप सब संगठित हो जायें। कदम-से-कदम मिलाकर चलें। एक स्वर में बोलें। परस्पर विरोध न करें।

जब तक हमारे मन में इस बात का पक्का निश्चय नहीं होगा कि यह सृष्टि शुभ है, तब तक मन एकाग्र नहीं होगा। जब तक हम समझते रहेंगे कि सृष्टि बिगड़ी हुई है, तब तक मन सशंक दृष्टि से चारों ओर दौड़ता रहेगा। सर्वत्र मंगलमय दृष्टि रखने से मन अपने-आप शांत होने लगेगा।

श्रीकृष्ण और सुदामा

कंस-वध के बाद श्रीकृष्ण तथा बलराम गुरुकुल में निवास करने की इच्छा से काश्यपगोत्री सान्दीपनि मुनि के पास गये, जो अवन्तीपुर (उज्जैन) में रहते थे। दोनों भाई विधिपूर्वक गुरुजी के पास रहने लगे। उस समय वे बड़े ही सुसंयत ढंग से रहते व अपनी चेष्टाओं को सर्वथा नियंत्रित रखे हुए थे। गुरुजी तो उनका आदर करते ही थे, भगवान श्रीकृष्ण और बलराम भी गुरुजी की उत्तम सेवा कैसे करनी चाहिए, इसका आदर्श लोगों के सामने रखते हुए बड़ी भक्तिपूर्वक उनकी सेवा इष्टदेव के समान करने लगे।

गुरुवर सान्दीपनि उनकी शुद्धभाव से युक्त सेवा से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने दोनों भाइयों को छहों अंग और उपनिषदों सहित सम्पूर्ण वेदों की शिक्षा दी। इनके सिवा मंत्र और देवताओं के ज्ञान के साथ धनुर्वेद, मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्र, मीमांसा आदि वेदों का तात्पर्य बतलानेवाले शास्त्र, तर्कविद्या (न्यायशास्त्र) आदि की भी शिक्षा दी। साथ ही सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैध और आश्रय - इन छः भेदों से युक्त राजनीति का भी अध्ययन कराया। भगवान श्रीकृष्ण और बलराम सारी विद्याओं के प्रवर्तक हैं। उस समय वे केवल श्रेष्ठ मनुष्य का-सा व्यवहार करते हुए अध्ययन कर रहे थे। उन्होंने गुरुजी के केवल एक बार कहने मात्र से सारी विद्याएँ सीख लीं। केवल चौंसठ दिन-रात में ही संयमशिरोमणि दोनों भाइयों ने चौंसठों कलाओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया।

'श्रीमद्भागवत' के दसवें स्कंध के ८० वें अध्याय में अपने सहपाठी सुदामा से गुरु-महिमा का वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं :

''ब्राह्मणशिरोमणे ! क्या आपको उस समय की बात याद है, जब हम दोनों एक साथ गुरुकुल में निवास करते थे। सचमुच, गुरुकुल में ही द्विजातियों को अपने ज्ञातव्य वस्तु का ज्ञान होता है, जिसके द्वारा वे अज्ञानान्धकार से पार हो जाते हैं।

मित्र ! इस संसार में शरीर का कारण-जन्मदाता पिता प्रथम गुरु है। इसके बाद उपनयन-संस्कार करके सत्कर्मों की शिक्षा देनेवाला दूसरा गुरु है, वह मेरे ही समान पूज्य है। तदनन्तर ज्ञानोपदेश करके परमात्मा को प्राप्त करानेवाला गुरु तो मेरा स्वरूप ही है। वर्णाश्रमियों में जो लोग अपने गुरुदेव के उपदेशानुसार अनायास ही भव-सागर पार कर लेते हैं, वे अपने स्वार्थ और परमार्थ के सच्चे जानकार हैं।

प्रिय मित्र ! मैं सबका आत्मा हूँ, सबके हृदय में अन्तर्यामीरूप से विराजमान हूँ। मैं गृहस्थ के धर्म पंचमहायज्ञ आदि से, ब्रह्मचारी के धर्म उपनयन-वेदाध्ययन आदि से, वानप्रस्थी के धर्म तपस्या से और सब ओर से उपरत हो जाना - इस संन्यासी के धर्म से भी उतना सन्तुष्ट नहीं होता, जितना गुरुदेव की सेवा-शुश्रूषा से सन्तुष्ट होता हूँ।

ब्रह्मन् ! जिस समय हम लोग गुरुकुल में निवास कर रहे थे, उस समय की वह बात आपको याद है क्या, जब एक दिन हम दोनों को हमारी गुरुपत्नी ने ईंधन (लकड़ियाँ) लाने के लिए जंगल में भेजा था। उस समय हम लोग एक घोर जंगल में गये हुए थे और बिना ऋतु के ही बड़ा भयंकर आँधी-पानी आ गया था। आकाश में बिजली कड़कने लगी थी। जब सूर्यास्त हो गया, तब चारों ओर अँधेरा-ही-अँधेरा फैल गया था। धरती पर इस प्रकार पानी-ही-पानी हो गया कि कहाँ गड्ढा है, कहाँ किनारा, इसका पता ही नहीं चलता था ! वह वर्षा क्या थी, एक छोटा-मोटा प्रलय ही था। आँधी के झटकों और वर्षा की बौछारों से हम दोनों को बड़ी पीड़ा हुई, दिशा का ज्ञान न रहा। हम दोनों अत्यन्त आतुर हो गये और एक-दूसरे का हाथ पकड़कर जंगल में इधर-उधर भटकते रहे।

जब हमारे गुरुदेव सान्दीपनि मुनि को इस बात का पता चला, तब वे सूर्योदय होने पर हम दोनों को ढूँढ़ते हुए जंगल में पहुँचे और उन्होंने देखा कि हम अत्यन्त आतुर हो रहे हैं। वे कहने लगे : 'आश्चर्य है, आश्चर्य है ! पुत्रो ! तुम दोनों ने हमारे लिए अत्यन्त कष्ट उठाया। सभी प्राणियों को अपना शरीर सबसे अधिक प्रिय होता है परन्तु तुम दोनों ने उसकी भी परवाह न करके हमारी सेवा में ही संलग्न रहे। गुरु के ऋण से मुक्त होने के लिए सत्शिष्यों का इतना ही कर्त्तव्य है कि वे विशुद्ध-भाव से अपना सब कुछ और शरीर भी गुरुदेव की सेवा में समर्पित कर दें। द्विज-शिरोमणियो ! मैं तुम दोनों से अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम्हारे सारे मनोरथ, सारी अभिलाषाएँ पूर्ण हों और तुम दोनों ने मुझसे जो वेदाध्ययन किया है, वह तुम्हें सर्वदा कण्ठस्थ रहे तथा इस लोक और परलोक में कहीं भी निष्फल न हो।'

प्रिय मित्र ! जिस समय हम लोग गुरुकुल में निवास कर रहे थे, हमारे जीवन में ऐसी अनेकों घटनाएँ घटित हुई थीं। इसमें सन्देह नहीं कि गुरुदेव की कृपा से ही मनुष्य शांति का अधिकारी होता है और पूर्णता को प्राप्त करता है।''

भगवान शिवजी ने भी कहा है :

धन्या माता पिता धन्यो गोत्रं धन्यं कुलोद्भवः ।
धन्या च वसुधा देवि यत्र स्याद् गुरुभक्तता ॥

'जिसके अंदर गुरुभक्ति हो उसकी माता धन्य है, उसका पिता धन्य है, उसका वंश धन्य है, उसके वंश में जन्म लेनेवाले धन्य हैं, समग्र धरती माता धन्य है।'

सेवाधारियों एवं सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनीऑर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें।

(२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरूआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जायेगी।
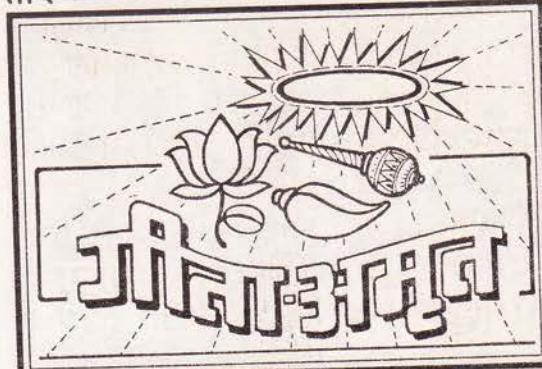
गीता-ज्ञान से विमुखता

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

किसीका भगवान सातवें अर्श पर रहता है तो किसीका भगवान कहीं और बसता है, लेकिन गीता का भगवान तो जीव को रथ पर बैठाता है और खुद सारथी होकर रथ चलाता है। वह खुद छोटा होकर, सारथी होकर भी जीव को शिव का साक्षात्कार कराने में संकोच नहीं करता है। कैसा अनूठा है गीता का भगवान !

उस गीताकार श्रीकृष्ण का जन्म भी कैसी विषम परिस्थितियों में हुआ है ! माता-पिता कारागार में बंद हैं... जन्मते ही मथुरा से गोकुल ले जाये गये... छठे दिन ही पूतना विषपान कराने आ गयी... फिर कभी अघासुर तो कभी बकासुर... कभी धेनुकासुर तो कभी कोई और... यहाँ तक कि किशोरावस्था में ही मामा कंस को स्वधाम पहुँचाना पड़ा ! फिर भी जब भी देखो, गीता का भगवान सदा मुस्कराता ही मिला... युद्ध के मैदान में भ हँसते-हँसते अर्जुन को गीता का ज्ञान दे दिया !

गीताकार श्रीकृष्ण ने ऐसा नहीं कहा कि 'इत व्रत करो, इतने तप करो, इतने नियम करो फिर मिलूँगा।' उन्होंने तो कहा है :

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ॥

'यदि तू अन्य सब पापियों से भी अधिक प करनेवाला है, तो भी तू ज्ञानरूप नौका द्व निःसंदेह संपूर्ण पाप-समुद्र से भलीभाँति जायेगा।' (गीता : ४.३

ऐसा दिव्य ज्ञान देनेवाली 'श्रीमद्भगवद्गीता' का प्राकट्य जहाँ हुआ है, उसी देश के लोग अगर आलसी-प्रमादी, निस्तेज और भयभीत हो जायें तो उसके लिए जिम्मेदार है - लोगों की गीता के ज्ञान से विमुखता ।

गीता का ज्ञान इतना अद्भुत है कि उसमें जीवन की हर समस्या का समाधान मिल सकता है। फिर भी आज के मनुष्य के जीवन में देखो तो उसका जरा-जरा-सी बात में चिढ़ जाना, दुःखी-भयभीत हो जाना, ईर्ष्या-द्वेष और अशांति की अग्नि में जलना ही नजर आता है।

उसे कोई अपमान के दो वचन सुना देता है तो वह आगबबूला हो जाता है और कोई प्रशंसा के दो शब्द सुना देता है तो वह प्रशंसक का पिट्ठू बन जाता है । अब इतना तो लालिया और कालिया (कुत्ते) भी जानते हैं। कुत्ते भी जलेबी देखकर पूँछ हिलाने लग जाते हैं और डंडा देखकर पूँछ दबाकर भाग जाते हैं। अगर हममें भी केवल इतनी ही अक्ल है तो मनुष्य-जन्म पाने से क्या लाभ ? पढ़ाई-लिखाई करने से हमें क्या लाभ ? हम भी द्विपाद पशु ही हो गये...

यह सब गीता के ज्ञान से विमुखता का ही परिणाम है। अगर हम गीता के ज्ञान के सम्मुख हो जायें, गीता के ज्ञान को समझकर आचरण में लायें तो फिर हमारा द्विपाद पशु कहलाने का दुर्भाग्य न रहेगा।

भगवान कहते हैं चाहे तुमने कैसे भी कर्म किये हों या तुम किसीसे ठगे गये हो अथवा तुम चिंतित और परेशान हो किंतु यदि तुम गीता की शरण में आ जाओ तो गीता का ज्ञान तुम्हें परम सुख का राजमार्ग दिखा देगा।

जैसे, तुम भारत से अमेरिका जाना तो चाहो, लेकिन जाओ बैलगाड़ी से तो कब पहुँचोगे ? इसी प्रकार तुम पाना तो चाहते हो परम सुख और पकड़ते हो नश्वर संसार के बैलगाड़ीरूपी साधन, तो कब पहुँचोगे ? किंतु एक बार ब्रह्मज्ञानरूपी हवाईजहाज में बैठ जाओ तो वह तुम्हें परम सुख के द्वार तक अवश्य पहुँचा देगा।

गीता का ज्ञान ऐसा ही हवाईजहाज है और भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के द्वारा उस ब्रह्मज्ञान को अत्यंत सहज-सरल रूप से समझा भी दिया है। फिर भी उसे पाने में कोई विघ्न आये तो उसके निवारण का तरीका भी भगवान बताते हैं। भगवान कहते हैं :

''केवल तुम्हें गाँठ बाँधनी है कि अब हमें संसार में पच-पचकर मरना नहीं है। हमें ईश्वर के मार्ग पर ही चलना है और आत्मज्ञान पाकर ही रहना है। अब हमें शहंशाह होकर जीना है। शहंशाह होकर परम शहंशाह से मिलना है।''

कोई राजा से मिलने जाता है तो भिखमंगे के कपड़े पहनकर नहीं जाता, अच्छे कपड़े पहनकर ही जाता है। तुम भी किसी विशेष व्यक्ति से मिलने जाते हो तो कपड़े ठीक-ठाक करके ही जाते हो, मूँछों पर ताव देते हो और जाते-जाते भी दर्पण में मुख देख लेते हो।

जब किसी विशेष व्यक्ति से मिलने जाते हो तब भी सज-धजकर जाते हो तो उन शहंशाहों-के-शहंशाह, अखिल ब्रह्मांडनायक के पास वासना से दीन-हीन होकर, चिंता-मुसीबतों से लाचार और भयभीत होकर क्या जाना ? शहंशाह होकर जाओ, भैया ! और शहंशाह होकर जाने का उपाय मिलता है - गीता के ज्ञान से।

जब तक गीता के ज्ञान से विमुखता है, तब तक तुम संसार के कामों में उलझते रहते हो, भटकते रहते हो । किंतु जब गीता का अमृतमय ज्ञान मिल जाता है, तब सारी भटकान मिटाने की दिशा मिल जाती है, ब्रह्मज्ञान को पाने की युक्ति मिल जाती है और वह युक्ति मुक्ति के मंगलमय द्वार खोल देती है।

संसार की सब चीजें बदल रही हैं, भूतकाल की ओर भाग रही हैं और आप उन्हें वर्त्तमान में टिकाये रखना चाहते हैं । यही जीवन के दुःखों की मूल ग्रंथि है। आप चेतन होने पर भी जड़ वस्तु को छोड़ने से इन्कार करते हैं। दृष्टा होने पर भी दृश्य में उलझे हुए हैं।

- आश्रम की पुस्तक 'ईश्वर की ओर' से
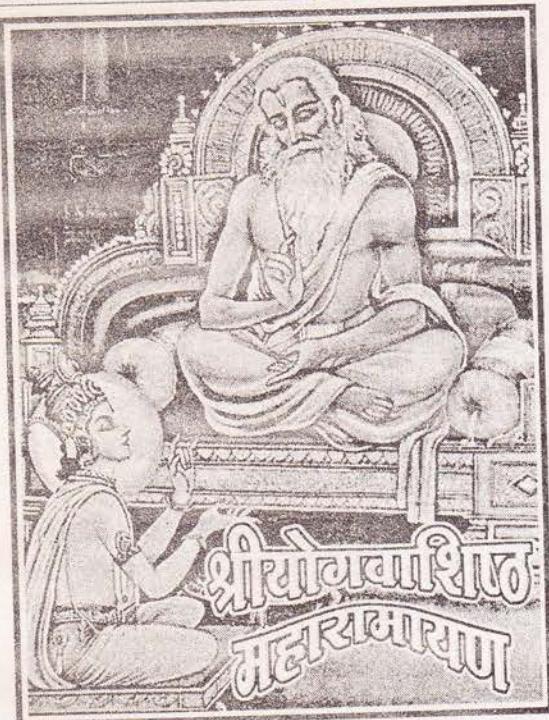
राजा दशरथ की गुरुभक्ति

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

'श्री योगवाशिष्ठ महारामायण' के 'निर्वाण प्रकरण' में महाराज दशरथ हाथ जोड़कर वशिष्ठजी महाराज से कहते हैं :

''हे भगवन् ! आपकी कृपा से हम छः ऐश्वर्यों से सम्पन्न हुए हैं । आपने संपूर्ण शास्त्र सुनाया है, जिसको सुनकर हम पूजनीय हुए हैं । इसलिए हे देव ! हम आपका पूजन किस सामग्री से करें ? पृथ्वी, आकाश और देवताओं के लोकों में भी ऐसा कोई पदार्थ नहीं दिखता, जो आपकी पूजा के योग्य हो, क्योंकि सब पदार्थ कल्पित हैं और जो सत्य पदार्थ से पूजा करें तो सत्य आपसे ही पाया है । इसलिए ऐसा कोई पदार्थ नहीं, जो आपकी पूजा के योग्य हो । तथापि अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार हम आपका पूजन करते हैं । आप हम पर क्रोध न करना और हमारी हँसी भी न करना । हे मुनीश्वर ! मैं राजा दशरथ, अपने अन्तःपुर की सब स्त्रियाँ, अपने चारों पुत्र, सम्पूर्ण राज्य और सम्पूर्ण प्रजासहित जो कुछ मैंने लोक में यश पाया है और परलोक के निमित्त पुण्य किया है, वह सब आपके चरणों में अर्पण करता हूँ।''

कैसा विलक्षण होता है ब्रह्मज्ञान ! ब्रह्मज्ञान का बदला जगत के किसी भी पदार्थ से नहीं चुकाया जा सकता । इसीलिए आँखों में अश्रु लिये, गद्गद कंठ से राजा दशरथ वशिष्ठजी के चरणों में प्रणाम करते हुए कहते हैं :

''हे मुनिश्वर ! आपने हमें जो शांति का प्रसाद दिया है उसके बदले में देने के लिए हमारे पास कुछ नहीं है । हे गुरुवर ! हमारे पास जो कुछ भी है वह नश्वर है और आपने हमें शाश्वत का संगीत दिया है । हमारे पास जो कुछ है वह मिटनेवाला है और आपने हमें अमिट आत्मा का अनुभव कराया है ।

गुरुदेव ! आप हम पर नाराज न होना । हमारी यह तुच्छ भेंट अवश्य स्वीकार करना ।

हे भगवन् ! आपके कृपाप्रसाद से हमने जो कुछ पाया है वह असीम है और हमारे पास जो है वह सीमित है ।

यह चार द्वीपों का राज्य, अपनी स्त्रियाँ और राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न ये चारों पुत्र मैं आपको अर्पित करता हूँ। इसके अलावा मैंने कुएँ-बावड़ियाँ आदि खुदवायी हैं और जो कुछ भी पुण्यकर्म किये हैं वे सब भी मैं आपके चरणों में अर्पित करता हूँ। फिर भी आपके कृपाप्रसाद का बदला चुकाने में मैं अपने को असमर्थ पाता हूँ। किंतु कहीं कृतघ्न न रह जाऊँ इसलिए ये नश्वर चीजें आपके चरणों में अर्पित करता हूँ।

यह मेरी नादानी तो है लेकिन क्या करूँ दिये बिना रहा भी नहीं जाता... जैसे सद्गुरु सत्शिष्य पर बरसे बिना नहीं रह सकते, जैसे माँ बालक को कुछ-न-कुछ दिये बिना नहीं रह सकती, ऐसे ही हे मुनिश्वर ! आप भी दिये बिना नहीं रह पाये ।

आपने हमें ऐसा दिया है, जिसका बयान यह वाणी नहीं कर सकती। आपके श्रीचरणों में मैं केवल इतनी ही प्रार्थना करता हूँ कि आपका यह ज्ञान, आपका यह आध्यात्मिक प्रसाद और फलता-फूलता रहे, बढ़ता रहे और मेरे सरीखे लोगों के उजाड़ अंतःकरण को आपका कृपाप्रसाद महकाता

रहे। आपकी कृपादृष्टि हम पर सदा बनी रहे। मैं आपकी कृपा से सदा सत्पद में स्थिर रहूँ और आपका सत्प्रसाद मुझे, मेरे परिवार को तथा मेरे राज्य के लोगों को प्राप्त होता रहे...''

धनभागी थे महाराज दशरथ जिन्हें गुरुवर वशिष्ठजी के श्रीचरणों में बैठकर सत्संग-श्रवण का अवसर मिला। धनभागी थे वे लोग जिन्हें वशिष्ठजी के दर्शन हुए...

शिवाजी महाराज ने भी अपना राजपाट सद्गुरुदेव श्री समर्थ को भिक्षा में दे डाला था। तब श्री समर्थ ने शिवाजी से कहा था :

''अब इस राजपाट को तू मेरा समझकर सँभालना। मेरे मंत्री होकर राज्य करना। राज्य गुरु का है, तू केवल उसका व्यवस्थापक है, ऐसा समझकर राज्य करना।''

तबसे शिवाजी ने अपना ध्वज निकालकर गुरु का भगवा ध्वज फहरा दिया। धन्य हैं शिवाजी जैसे राजपुरुष ! जो राज्य करते हुए भी आत्मज्ञानी श्रीसमर्थ को अपना हृदय दे पाये थे।

तू अपना उर आँगन दे दे, मैं अमृत की वर्षा कर दूँ...

अगर ब्रह्मज्ञानी गुरुओं का शारीरिक सान्निध्य नहीं मिलता, उनके श्रीचरणों में बैठकर सत्संग सुनने का मौका नहीं मिलता अथवा उनकी सेवा करने का अवसर नहीं मिलता तो कम-से-कम उनसे मानसिक और बौद्धिक सम्बन्ध ही जोड़कर रखें तो भी इससे बहुत लाभ होता है।

शरीर से गुरु मिलना कोई बड़ी बात नहीं है लेकिन गुरुभक्ति के बल से गुरु के हृदय से मिलना बहुत बड़ी बात है। जो सत्पात्र शिष्य होते हैं उनको पता होता है कि गुरु के साथ हृदय मिलाने से मनुष्य कितना निश्चिंत हो जाता है और कितना उन्नत हो जाता है।

गुरुमुख व्यक्ति ही समुन्नत हो पाता है अन्यथा पुराने संस्कार आदमी को मनमुखता की ओर घसीटकर ले जाते हैं। अपने मन में जैसा आया वैसा तो चिड़िया और कीट-पतंग भी कर लेते हैं लेकिन मन से जो ब्रह्मवेत्ताओं के साथ सम्बन्ध जोड़ ले उसीका जीवन सार्थक है।

दो प्रकार के साधन

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

वेदों में मुख्य रूप से दो प्रकार के साधन बताये गये हैं : विधेयात्मक और निषेधात्मक।

यजुर्वेद के 'बृहदारण्यक उपनिषद्' में आता है : **अहं ब्रह्मास्मि।** अर्थात् 'मैं ब्रह्म हूँ...' तो जो 'मैं-मैं' बोलता है, वह वास्तव में ब्रह्म है। लेकिन देह को 'मैं' मानकर आप ब्रह्म नहीं होगे। आपका जोर 'देह' पर है कि 'चेतन' पर ? 'अहं' पर जोर है कि 'ब्रह्म' पर ? **अहं ब्रह्मास्मि।** 'मैं ब्रह्म हूँ... मैं साक्षी हूँ...' तो स्थूल 'मैं' पर जोर है कि शुद्ध 'साक्षी' पर ? यदि 'मैं' पर जोर है तो इससे अहंकार बढ़ने की संभावना है और 'ब्रह्म' पर जोर है तो अहंकार के विसर्जन की संभावना है। यह साधना है विधेयात्मक।

'बीमारी होती है तो शरीर को होती है। दुःख होता है तो मन को होता है। राग-द्वेष होता है तो बुद्धि को होता है। गरीबी-अमीरी सामाजिक व्यवस्था में होती है। मैं इन सबसे निराला हूँ। बीमारी के समय भी मैं बीमारी का साक्षी हूँ। दुःख के समय भी मन में दुःखाकार वृत्ति हुई उस वृत्ति का मैं साक्षी हूँ...' इस प्रकार साक्षीस्वभाव... **'अहं ब्रह्मास्मि'** की भावनावाली साधना को बोलते हैं विधेयात्मक साधना। किन्तु इसमें अहंकार होने की संभावना है कि 'मैं ब्रह्म हूँ... मैं चेतन हूँ... मैं साक्षी हूँ... ये लोग संसारी हैं। मैं अकर्त्ता हूँ, ये लोग कर्त्ता हैं।'

दूसरी जो निषेधात्मक साधना है उसमें

अहंकार के घुसने की जगह नहीं है। कैसे ?

निषेधात्मक साधना में साधक यह चिंतन करता है : 'मैं शरीर नहीं हूँ... इन्द्रियाँ नहीं हूँ... चित्त नहीं हूँ... अहंकार नहीं हूँ...' इत्यादि। इस प्रकार 'यह नहीं... यह नहीं... **नेति... नेति...**' करते-करते फिर जो बाकी रहेगा उसमें वह शांत होता जायेगा।

'मैं आत्म-साक्षात्कार करके ही रहूँगा...' इसमें अहंकार हो सकता है। 'मुझे आत्म-साक्षात्कार नहीं करना है...' यह भी अहंकार है, परंतु 'मुझे तो तुझे पाना है... मुझे अपना अहं मिटाना है...' तो मिटने में अहंकार को घुसने की जगह नहीं मिलती है। इसलिए यह बड़ा सुरक्षित मार्ग हो जाता है।

इस तरह निषेधात्मक साधना भी विधेयात्मक साधना से ज्यादा सुरक्षित रूप से हमें परमात्मा की विश्रांति में पहुँचा देती है। लेकिन जो निराशावादी हैं उनके लिए निषेधात्मक साधना की अपेक्षा विधेयात्मक साधना ज्यादा लाभकारी है। इसीलिए वेदों में दोनों मार्ग बताये गये हैं।

*

समय और साधन का सदुपयोग कैसे ?

परम सुहृद परमात्मा ने असीम करुणा करके हम लोगों को जो विवेक, बुद्धि और ज्ञान आदि दिये हैं, उनका उचित उपयोग करके हमें विचार करना चाहिए कि हमारा समय किस कार्य में बीत रहा है।

परमात्मा ने हमको जो कुछ भी दिया है, क्या हम उन सबका सदुपयोग कर रहे हैं ? यदि नहीं, तो क्या हमें बाद में पछताना नहीं पड़ेगा ? क्योंकि जो मनुष्य अपने समय को नष्ट कर देता है उसे सदा के लिए पश्चाताप करना ही पड़ता है। अतः किसी भी कार्य को करने से पहले हमें यह विचार करना चाहिए कि क्या हम ठीक कार्य कर रहे हैं ? यदि नहीं, तो हमें उस कार्य को नहीं करना चाहिए। इसी तरह कार्य करने से पहले उसके परिणाम का विचार भी अत्यन्त आवश्यक है। जो समय को अनुचित आहार-व्यवहार में नष्ट करता है वह स्वयं को ही नष्ट करता है। जो समय और वस्तुओं को अनुचित ढंग से बरबाद करता है वह स्वयं बरबाद हो जाता है। अतः हे पवित्र आत्मन् ! हिम्मतवान बनो। मार्ग के शत्रुओं की अपेक्षा भीतर के शत्रुओं को मार भगाओ। प्रतिदिन मन के दोषों को सामने लाकर चिंतन करो कि आज गलती नहीं करेंगे, आज अधिक आहार नहीं करेंगे। हर घंटे दोहराओ। ॐ... ॐ... का गुंजन करो। परमात्मा आपके प्रेरक हैं, रक्षक हैं, पोषक हैं। शुभ संकल्प के पोषण के लिए बार-बार उनका स्मरण करो। ॐ... ॐ... अंतर्यामी ॐ... दीनदयाल ॐ... सदा दयालु ॐ... ॐ...

समय बड़ा अमूल्य है। एक क्षण का समय भी लाखों रुपये खर्च करने से या स्तुति-प्रार्थनापूर्वक रुदन करने से या अन्य किसी भी उपाय से मिलना सम्भव नहीं है। अतः जीवन का जो कुछ भी समय शेष है उसीमें अपना काम शीघ्र बना लेना है। समय और साधनों का सदुपयोग करके स्वयं को परमात्मा में स्थित किया जा सकता है।

अतः मनुष्य को शीघ्रातिशीघ्र सावधान हो परमात्मा की प्राप्ति के लिए कटिबद्ध होकर प्रयत्न करना चाहिए। परमात्मा की प्राप्ति के लिए मन, बुद्धि, शरीर, इन्द्रियाँ आदि जिन चीजों की आवश्यकता है, वे सब ईश्वर की कृपा से हम सबको प्राप्त हैं। ईश्वर के दिये हुए इन पदार्थों का जो ठीक से सदुपयोग करता है, वह मानव-जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य की प्राप्ति कर लेता है। परंतु जो उनका दुरुपयोग करता है, उसका पतन होने लगता है।

मन-बुद्धि-इन्द्रियों का संयम करके उनको संसार के विषय-भोगों से हटाकर परमात्मा में लगा देना उनका सदुपयोग करना है और इसके विरुद्ध निद्रा, आलस्य, प्रमाद, पाप, और विषय-भोगों में लगाना दुरुपयोग है। बुद्धि और विवेक के होते हुए भी यदि समय का उचित उपयोग न करें तो यह हम

लोगों की महान मूर्खता है। मनुष्य को पद-पद पर, क्षण-क्षण में विवेकयुक्त बुद्धि से काम लेना चाहिए। जो अपने समय का उचित उपयोग करता है वही बुद्धिमान है और वही सफल होता है।

यह मनुष्य-शरीर, उत्तम देश-काल, भगवत्प्राप्त महापुरुषों का संग ईश्वर की कृपा से ही प्राप्त हुआ है। ऐसा अवसर बार-बार मिलना कठिन है। इसलिए शीघ्र ही सावधान होकर अपना कार्य सिद्ध कर लेना चाहिए। अपने समय का एक क्षण भी व्यर्थ नहीं खोना चाहिए।

*** संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग प्रवचन से ***

शिवाजी महाराज की गुरुभक्ति

छत्रपति शिवाजी समर्थ गुरु रामदास स्वामी के एकनिष्ठ भक्त थे। समर्थ भी उन्हें सभी शिष्यों से अधिक प्यार करते थे। यह देखकर अन्य शिष्यों के मन में हुआ कि 'शिवाजी के राजा होने के कारण समर्थजी उनसे अधिक प्रेम रखते हैं।'

एक दिन समर्थजी ने उनका,सन्देह दूर करने का विचार किया। वे शिष्यमण्डली के साथ जंगल में गये। वहाँ जाकर रास्ता भूल गये और समर्थजी एक गुफा में उदरशूल का बहाना करके लेट गये। शिष्य आये, देखा कि गुरुजी पीड़ा से कराह रहे हैं। उन्होंने समर्थजी से पीड़ा-निवारण का उपाय पूछा। उनके द्वारा उपाय बताने पर शिष्य एक-दूसरे के मुँह ताकने लगे। दुर्बल मन के लोग और बक-भगत की जैसी हिलचाल होती है वैसा वातावरण बन गया।

इधर शिवाजी महाराज समर्थजी के दर्शनार्थ निकले। उन्हें पता चला कि समर्थजी इसी जंगल में कहीं हैं। खोजते-खोजते एक गुफा के पास आये। गुफा में पीड़ा से विह्वल शब्द सुनायी पड़ा। भीतर जाकर देखा तो साक्षात् गुरुदेव ही विकलता से करवटें बदल रहे हैं। शिवाजी ने हाथ जोड़कर उनकी वेदना का कारण पूछा।

समर्थजी ने कहा : ''शिवा ! भीषण उदर-पीड़ा से विकल हूँ।''

शिवाजी : ''महाराज ! इसकी दवा ?''

श्री समर्थ : ''शिवा ! इसकी कोई दवा नहीं। रोग असाध्य है। हाँ, एक ही दवा काम कर सकती

है, पर जाने दो...''

शिवाजी : ''नहीं गुरुदेव ! निःसंकोच बतायें। शिवा गुरुदेव को स्वस्थ किये बिना चैन नहीं ले सकता।''

श्री समर्थ : ''शेरनी का दूध और वह भी ताजा निकाला हुआ, पर शिवा ! वह सर्वथा दुष्प्राप्य है।''

शिवाजी ने पास में पड़ा गुरुदेव का तुम्बा उठाया और समर्थजी को प्रणाम करके तत्काल शेरनी की खोज में निकल पड़े।

कुछ दूर जाने पर एक जगह दो सिंह-शावक दिखायी पड़े। शिवाजी ने सोचा : 'निश्चय ही यहाँ इनकी माता आयेगी।' संयोग से वह आ भी गयी। अपने बच्चों के पास अनजाने मनुष्य को देख, वह शिवा पर गुर्राने लगी।

शिवाजी शेरनी से लड़ने में समर्थ तो थे, परंतु यहाँ लड़ना नहीं था वरन् शेरनी का दूध निकालना था। उन्होंने धैर्य धारण किया और हाथ जोड़कर उससे विनय करने लगे :

''माँ ! मैं यहाँ तुम्हें मारने या तुम्हारे बच्चों को उठा ले जाने के लिए नहीं आया हूँ। गुरुदेव को स्वस्थ करने के लिए तुम्हारा दूध चाहिए, वह निकाल लेने दो। गुरुदेव को दे आऊँ, फिर भले ही तुम मुझे खा जाना।'' शिवाजी ने ममता-भरे हाथ से उसकी पीठ सहलायी।

मूक प्राणी भी ममता से अधीन हो जाते हैं। शेरनी का क्रोध शान्त हो गया और वह बिल्ली की तरह उन्हें चाटने लगी।

मौका देख शिवाजी ने उसकी कोख में हाथ डाल दूध दुहकर तुम्बा भर लिया और उसे नमस्कार कर बड़े आनन्द के साथ निकल पड़े।

गुफा में पहुँचकर गुरुदेव के समक्ष दूध से भरा हुआ तुम्बा रखते हुए शिवाजी ने गुरुदेव को प्रणाम किया।

''आखिर तुम शेरनी का दूध भी ले आये ! धन्य हो शिवा ! तुम्हारे जैसे एकनिष्ठ शिष्य के रहते गुरु को पीड़ा ही क्या रह सकती है !'' समर्थजी ने शिवाजी के सिर पर हाथ रखते हुए अन्य शिष्यों की ओर दृष्टि की।

अब शिष्यों को पता चला कि ब्रह्मवेत्ता गुरु अगर किसीको प्यार करते हैं तो उसकी अपनी विशेष योग्यताएँ होती हैं, विशेष कृपा का वह अधिकारी होता है। ईर्ष्या करने से तो अपनी दुर्बलताएँ और अयोग्यताएँ बढ़ती हैं। अतः ऐसे विशेष कृपा के अधिकारी गुरुभाइयों को देखकर ईर्ष्या करने के बजाय अपनी दुर्बलताएँ, अयोग्यताएँ दूर करने में लगना चाहिए।

*

छत्रपति शिवाजी की रक्षा

समर्थ रामदास के शिष्य छत्रपति शिवाजी मुगलों के साथ टक्कर ले रहे थे। शूरवीर शिवाजी से खुलेआम मुठभेड़ करने में असमर्थ मुगलों ने मैली विद्या का उपयोग करके शिवाजी को एकान्त में खत्म करने के लिए षड्यंत्र रचा। एक मुगल किसी तंत्र-मंत्र के बल से पहरा देनेवाले सिपाहियों को चकमा देकर, विघ्न-बाधाओं को हटाकर, शिवाजी जहाँ आराम कर रहे थे, उस कमरे में पहुँच गया। उसने म्यान से तलवार निकालकर शिवाजी पर वार करने के लिए ज्यों ही हाथ उठाया, त्यों ही किसी अदृश्य शक्ति ने उसका हाथ पकड़ लिया। मुगल को हुआ कि 'मैं सबकी नजरों से बचकर टोने-टोटके की विद्या के बल से यहाँ तक पहुँचने में तो सफल हो गया, किंतु अब आख़िरी मौके पर मुझे कौन रोक रहा है?'

उसे तुरन्त जवाब मिला : 'रक्षकों की नज़रों से बचाकर तेरा इष्ट तुझे यहाँ तक ले आया तो शिवाजी का इष्ट भी शिवाजी को बचाने के लिए मौजूद है।'

शिवाजी का इष्ट उस मुगल के इष्ट से सात्त्विक था, इसलिए शत्रु के बद-इरादे निष्फल हो गये। शिवाजी का बचाव हो गया।

जिसका इष्टमंत्र जितना सिद्ध होता है, जितना प्रभावशाली होता है और इष्ट जितना प्रसन्न होता है, उसकी उतनी अधिक रक्षा होती है।

*

रामू की गुरुभक्ति

संत परम हितकारी होते हैं। वे जो कुछ कहें, उसका पालन करने के लिए डट जाना चाहिए। इसीमें हमारा कल्याण निहित है। महापुरुष की बात को टालना नहीं चाहिए। वशिष्ठजी महाराज 'श्री योगवाशिष्ठ महारामायण' में कहते हैं :

''हे रामजी ! त्रिभुवन में ऐसा कौन है जो संत की आज्ञा का उल्लंघन करके सुखी रह सके ?''

'श्री गुरुगीता' में भगवान शंकर कहते हैं :

गुरूणां सदसद्वापि यदुक्तं तन्न लंघयेत्।
कुर्वन्नाज्ञां दिवारात्रौ दासवन्निवसेद् गुरौ॥

'गुरुओं की बात सच्ची हो या झूठी परंतु उसका उल्लंघन कभी नहीं करना चाहिए। रात और दिन गुरु की आज्ञा का पालन करते हुए गुरु के सान्निध्य में दास बनकर रहना चाहिए।'

गुरुदेव की कही हुई बात चाहे झूठी दिखती हो फिर भी शिष्य को सन्देह नहीं करना चाहिए, कूद पड़ना चाहिए उनकी आज्ञा का पालन करने के लिए।

सौराष्ट्र (गुज.) में रामू नाम के महान गुरुभक्त शिष्य हो गये। लालजी महाराज के नाम उनका खत आता रहता था। लालजी महाराज ने ही रामू के जीवन की एक घटना बतायी थी।

एक बार रामू के गुरु ने कहा : ''रामू ! घोड़ागाड़ी ले आ। भगत के घर भोजन करने जाना है।''

रामू घोड़ागाड़ी ले आया। गुरु नाराज होकर बोले : ''अभी सुबह के सात बजे हैं, भोजन तो ११-१२ बजे होगा। बेवकूफ कहीं का, १२ बजे भोजन करने जाना है और गाड़ी अभी ले आया ? बेचारा ताँगेवाला बैठा रहेगा।''

रामू गया, ताँगेवाले को छुट्टी देकर आ गया। गुरु ने पूछा : ''क्या किया ?''

''ताँगा वापस कर दिया।'' हाथ जोड़कर रामू बोला।

गुरुजी : ''जब जाना ही था तो वापस क्यों किया ? मैंने कहा कि ताँगे में जाना है तो वापस क्यों किया ? जा ले आ।''

रामू गया। ताँगेवाले को बुला लाया। ''गुरुजी ! ताँगा आ गया।''

गुरुजी : ''अरे ताँगा ले आया ? हमें जाना तो बारह बजे है न ? पहले इतना समझाया, अभी तक नहीं समझा ? भगवान को क्या समझेगा ? ताँगे की छोटी-सी बात को नहीं समझता, राम को क्या समझेगा ?''

ताँगा वापस कर दिया गया। रामू आया तो गुरु गरज उठे : ''वापस कर दिया ? फिर समय पर मिले-न-मिले, क्या पता ? ले आ।''

दस बार ताँगा गया और वापस आया। रामू यह नहीं कहता कि 'गुरु महाराज ! आपने ही तो कहा था।' वह सत्पात्र शिष्य जरा-भी चिढ़ता नहीं। गुरुजी तो चिढ़ने का व्यवस्थित संयोग खड़ा कर रहे थे। रामू को गुरुजी के सामने चिढ़ना तो आता ही नहीं था, कुछ भी हो, गुरुजी के आगे वह मुँह बिगाड़ता ही नहीं था।

दसवीं बार ताँगा स्वीकृत हो गया। तब तक बारह बज गये थे। रामू और गुरुजी भक्त के घर गये। भोजन हुआ। भक्त था कुछ साधन-सम्पन्न। विदा के समय गुरुजी के चरणों में वस्त्रादि रखे और साथ में, रूमाल में सौ-सौ की दस नोटें (उस जमाने में) भी रख दीं और विनम्र होकर हाथ जोड़कर प्रार्थना की : ''गुरुजी ! कृपा करें। इनकार न करें। इतना स्वीकार करें।''

फिर वे ताँगे में बैठकर वापस आने लगे। रास्ते में गुरुजी ने ताँगेवाले से बातचीत की। ताँगेवाला कहता है :

''गुरुजी ! हजार रुपये में यह घोड़ागाड़ी बनी है। तीन सौ का घोड़ा लाया हूँ और सात सौ की गाड़ी। गुजारा नहीं होता। धन्धा चलता नहीं। बहुत ताँगेवाले हो गये हैं।''

गुरुजी : ''हजार रुपये में घोड़ागाड़ी बनी है तो हजार रुपये लेकर और कोई काम कर।''

ताँगेवाला : ''गुरुजी ! अब इसका हजार रुपया कौन देगा ? नयी गाड़ी थी तब हजार में बनी, अब थोड़ी-बहुत चली है। हजार कहाँ मिलेंगे ?''

गुरुजी ने उसे सौ-सौ के दस नोट पकड़ा दिये और बोले :

''जा बेटा ! और कोई अच्छे धन्धे में लग जा। रामू ! तू चला ताँगा।''

रामू यह नहीं कहता कि गुरुजी ! मुझे नहीं आता। मैंने ताँगा कभी नहीं चलाया। गुरुजी कहते हैं तो बैठ गया कोचवान होकर।

रास्ते में एक विशाल वटवृक्ष आया। गुरुजी ने ताँगा रुकवा दिया। उस समय पक्की सड़कें नहीं थीं। देहाती वातावरण था। गुरुजी सीधे आश्रम में जानेवाले नहीं थे। सरिता के किनारे टहलकर फिर शाम को जाना था। ताँगा रख दिया वटवृक्ष की छाया में। गुरुजी सो गये। सोये थे तब छाया थी, समय बीता तो ताँगे पर धूप आ गयी। जहाँ घोड़ा जोतते हैं वे डण्डे थोड़े तप गये थे। गुरुजी उठे, डंडे को छूकर देखा तो बोले :

''अरे रामू ! इस बेचारी गाड़ी को बुखार आ गया है। गर्म हो गयी है। जा पानी ले आ।''

रामू ने पानी लाकर गाड़ी पर छाँट दिया। गुरुजी ने फिर गाड़ी की नाड़ी देखी तथा रामू से पूछा :

''आदमी मरता है तो ठण्डा हो जाता है न ?''

रामू : ''हाँ।''

गुरुजी : ''तो यह गाड़ी मर गयी। ठण्डी हो गयी है बिल्कुल।''

रामू : ''जी, गुरुजी !''

गुरुजी : ''मरे हुए आदमी का क्या होता है ?''

रामू : ''जला दिया जाता है।''

गुरुजी : ''तो इसको भी जला दो। अंतिम क्रिया कर दो।''

गाड़ी जला दी गयी। रामू घोड़ा ले आया।

''अब घोड़े का क्या करेंगे ?'' रामू ने पूछा।

गुरुजी : ''घोड़े को बेच दे और गाड़ी का बारहवाँ करके, पैसे खत्म कर दे।''

घोड़ा बेचकर गाड़ी का क्रिया-कर्म करवाया, पिण्डदान दिया और बारह ब्राह्मणों को भोजन करवाया। जैसे, मृतक आदमी के पीछे जो कुछ किया जाता है वह सब गाड़ी के पीछे किया गया।

गुरुजी देखते हैं कि रामू के चेहरे पर अभी तक फरियाद का कोई चिह्न नहीं ! अपनी अक्ल का कोई प्रदर्शन नहीं ! रामू की अद्‌भुत श्रद्धा-भक्ति देखकर वे बोले :

''अच्छा, अब जा, भगवान काशी विश्वनाथ के दर्शन पैदल करके आ।''

कहाँ सौराष्ट्र (गुज.) और कहाँ काशी विश्वनाथ (उ.प्र.) !

रामू गया पैदल। भगवान विश्वनाथ के दर्शन करके लौट आया। गुरुजी ने पूछा :

''काशी विश्वनाथ के दर्शन किये ?''

रामू : ''हाँ गुरुजी।''

गुरुजी : ''गंगाजी में पानी कितना था ?''

रामू : ''मेरे गुरु की आज्ञा थी : 'काशी विश्वनाथ के दर्शन करके आ' - दर्शन करके आ गया।''

गुरुजी : ''अरे ! फिर गंगाजी नहीं गया ? और मठ-मंदिर कितने थे ?''

रामू : ''मैंने तो एक ही मठ देखा है- मेरे गुरुदेव का।''

गुरुजी का हृदय उमड़ पड़ा। रामू पर ईश्वरीय कृपा का प्रपात बरस पड़ा। गुरुजी ने रामू को छाती से लगा लिया : ''चल आ जा... तू मैं है... मैं तू हूँ... अब अहं कहाँ रहेगा !''

ईशकृपा बिन गुरु नहीं, गुरु बिना नहीं ज्ञान।
ज्ञान बिना आत्मा नहीं, गावहिं वेद पुरान॥

रामू का काम बन गया, परम कल्याण उसी क्षण हो गया। रामू अपने आनन्दस्वरूप आत्मा में जग गया, आत्म-साक्षात्कार हो गया।

*

बाबा फरीद

पाकिस्तान में बाबा फरीद नाम के एक फकीर हो गये। वे अनन्य गुरुभक्त थे। गुरुजी की सेवा में ही उनका सारा समय व्यतीत होता था।

एक बार उनके गुरु ख्वाजा बहाउद्दीन ने उनको किसी खास काम के लिए मुलतान भेजा। वहाँ उन दिनों में शाह शम्सतबरेज के शिष्यों ने

अपने गुरु के नाम का एक दरवाजा बनाया था और घोषणा की थी कि आज इस दरवाजे से जो गुजरेगा वह जरूर स्वर्ग में जायेगा । हजारों फकीर और गृहस्थ आज इस दरवाजे से गुजर रहे थे । नश्वर शरीर का त्याग होने के बाद स्वर्ग में स्थान मिलेगा ऐसी सबको आशा थी । फरीद को भी उनके मित्र फकीरों ने दरवाजे से गुजरने के लिए खूब समझाया, परंतु फरीद तो उनको जैसे-तैसे समझा-पटाकर अपना काम पूरा करके, बिना दरवाजे से गुजरे ही अपने गुरुदेव के चरणों में पहुँच गये ।

सर्वान्तर्यामी गुरुदेव ने उनसे मुलतान के समाचार पूछे और कोई विशेष घटना हो तो बताने के लिए कहा । फरीद ने शम्सजी के दरवाजे का वर्णन करके सारी हकीकत सुना दी ।

गुरुदेव बोले : ''मैं भी वहाँ होता तो उस पवित्र दरवाजे से गुजरता । तुम कितने भाग्यशाली हो फरीद कि तुमको उस पवित्र दरवाजे से गुजरने का सुअवसर प्राप्त हुआ !''

सद्गुरु की लीला बड़ी अजीबोगरीब होती है । शिष्य को पता भी नहीं चलता और वे उसकी कसौटी कर लेते हैं ।

फरीद तो सत्शिष्य थे । उनको अपने सद्गुरुदेव के प्रति अनन्य भक्ति थी । गुरुदेव के शब्द सुनकर वे बोले :

''कृपानाथ ! मैं तो उस दरवाजे से नहीं गुजरा । मैं तो केवल आपके दरवाजे से ही गुजरूँगा । एक बार मैंने आपकी शरण ली है तो अब और किसीकी शरण मुझे नहीं जाना है ।''

यह सुनकर ख्वाजा बहाउद्दीन की आँखों में प्रेम उमड़ आया । शिष्य की दृढ़ श्रद्धा और अनन्य शरणागति देखकर उसे उन्होंने छाती से लगा लिया । उनके हृदय की गहराई से आशीर्वादात्मक शब्द निकल पड़े :

''फरीद ! शम्सतबरेज का दरवाजा तो केवल एक ही दिन खुला था, परंतु तुम्हारा दरवाजा तो ऐसा खुलेगा कि उसमें से जो हर गुरुवार को गुजरेगा वह सीधा स्वर्ग में जायेगा ।''

आज भी पश्चिमी पाकिस्तान के पाक पट्टन कस्बे में बने हुए बाबा फरीद के दरवाजे में से हर गुरुवार को गुजरकर हजारों यात्री अपने को धन्यभागी मानते हैं । यह है गुरुदेव के प्रति अनन्य निष्ठा की महिमा !

धन्यवाद है ऐसे बाबा फरीद जैसे सत्शिष्यों को कि जिन्होंने सद्गुरु के हाथों में अपनी जीवन की बागडोर हमेशा के लिए सौंप दी और निश्चिंत हो गये !

आत्म-साक्षात्कार या तत्त्वबोध तब तक संभव नहीं जब तक ब्रह्मवेत्ता महापुरुष साधक के अन्तःकरण का संचालन नहीं करते । आत्मवेत्ता महापुरुष जब हमारे अन्तःकरण का संचालन करते हैं, तब अन्तःकरण तत्त्व में स्थित हो सकता है, नहीं तो किसी अवस्था में, किसी मान्यता में, किसी वृत्ति में, किसी आदत में साधक रुक जाता है । रोज आसन किये, प्राणायाम किये, शरीर स्वस्थ रहा, सुख-दुःख के प्रसंग में चोटें कम लगीं, घर की आसक्ति कम हुई, पर व्यक्तित्व बना रहेगा । उससे आगे जाना है तो महापुरुषों के आगे बिल्कुल 'मर जाना' पड़ेगा । ब्रह्मवेत्ता सद्गुरु के हाथों में जब हमारे 'मैं' की लगाम आती है, तब आगे की यात्रा होती है ।

सहजो कारज संसार को गुरु बिन होत नाहीं ।
हरि तो गुरु बिन क्या मिले समझ ले मन माँहीं ॥

(संत कबीर)

*

मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यं...

यति गोरखनाथ मार्ग से गुजर रहे थे । उन्हें देखकर एक किसान ने कहा : ''बाबाजी ! दोपहर हो गयी है । अभी-अभी घर से खाना आयेगा । आप भोजन पाना, थोड़ी देर विश्राम करना और शाम को जहाँ आपकी मौज हो, विचरण करना ।''

किसान की आँखों ने तो एक साधु देखा लेकिन भीतर एक समझ थी कि थोड़ी सेवा कर लूँ । उसने गोरखनाथजी को रिझाकर रोक लिया । उनको भोजन कराया । फिर गोरखनाथजी ने आराम किया । शाम को जब गोरखनाथजी जाने लगे तब

किसान ने प्रणाम करते हुए कहा :

''महाराजजी ! खेती करते-करते हम ढोरों जैसा जीवन बिता रहे हैं। कभी-कभी आप जैसे संत पधारते हैं। मुझे थोड़ा-सा उपदेश देते जाइये।''

गोरखनाथजी ने देखा कि है तो पात्र। उसे पैर से शिखा तक निहारा। फिर बोले :

''और उपदेश क्या दूँ ? जो मन में आये वह मत करना।''

जो वचन गुरु मच्छन्दरनाथ ने गोरखनाथ को कहे थे, वे ही वचन गोरखनाथ ने किसान को कहे और वे तो रमते भये।

संध्या हुई। किसान ने हल कन्धे पर रखकर पाँव उठाये। घर की ओर चला। याद आया गुरुजी का वचन : 'मन में आये वह मत करना।' महाराज ! वह रुक गया ! ऐसा रुका कि उसका मन भी रुक गया ! जो भी मन में आता वह नहीं करता। मन से पार हो गया। चौरासी सिद्धों में वह एक सिद्ध हो गया - 'हालीपाँव'। मतलब, हल उठाया, पाँव रखा और गुरु-वचन में टिक गया। नाम पड़ गया 'हालीपाँव सिद्ध।'

शिष्य की पात्रता हो तो गुरु का एक वचन ही पर्याप्त हो जाता है। **मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यं...**

*

अमीर खुसरो की गुरुनिष्ठा

निजामुद्दीन औलिया के हजारों शिष्य थे। उनमें से २२ ऐसे समर्पित शिष्य थे जो उन्हें खुदा मानते थे, अल्लाह का स्वरूप मानते थे।

एक बार हजरत निजामुद्दीन औलिया ने उनकी परीक्षा लेनी चाही। वे शिष्यों के साथ दिनभर दिल्ली के बाजार में घूमे। रात्रि हुई तो औलिया एक वेश्या की कोठी पर गये। वेश्या उन्हें बड़े आदर से कोठी की ऊपरी मंजिल पर ले गयी। सभी शिष्य नीचे इंतजार करने लगे कि 'गुरुजी अब नीचे पधारेंगे... अब पधारेंगे।'

वेश्या तो बड़ी प्रसन्न हो गयी कि मेरे ऐसे कौन-से सौभाग्य हैं जो कि ये दरवेश मेरे द्वार पर पधारें ? उसने औलिया से कहा :

''मैं तो कृतार्थ हो गयी कि आप मेरे द्वार पर पधारे। मैं आपकी क्या खिदमत करूँ ?''

औलिया ने कहा : ''अपनी नौकरानी के द्वारा भोजन का थाल और शराब की बोतल में पानी इस ढंग से मँगवाना कि मेरे चेलों को लगे कि मैंने भोजन व शराब मँगवायी है।''

वेश्या को तो हुक्म का पालन करना था। उसने अपनी नौकरानी से कह दिया।

थोड़ी देर बाद नौकरानी तदनुरूप आचरण करती हुई भोजन का थाल और शराब की बोतल लेकर ऊपर जाने लगी। तब कुछ शिष्यों को हुआ कि 'अरे, हमने तो कुछ और सोचा था, किंतु निकला कुछ और... गुरुदेव ने तो शराब मँगवायी...' ऐसा सोचकर कुछ शिष्य भाग गये।

ज्यों-ज्यों रात्रि बढ़ती गयी, त्यों-त्यों एक-एक करके शिष्य खिसकने लगे। ऐसा करते-करते सुबह हो गयी। निजामुद्दीन औलिया नीचे उतरे।

देखा तो केवल अमीर खुसरो ही खड़े थे। अनजान होकर उन्होंने पूछा :

''सब कहाँ चले गये ?''

अमीर खुसरो : ''सब भाग गये।''

औलिया : ''तू क्यों नहीं भागा ? तूने देखा नहीं क्या कि मैंने शराब की बोतल मँगवायी और सारी रात वेश्या के पास रहा।''

अमीर खुसरो : ''मालिक ! भागता तो मैं भी किंतु आपके कदमों के सिवाय और कहाँ भागता ?''

निजामुद्दीन औलिया की कृपा बरस पड़ी और बोले : ''बस, हो गया तेरा काम पूरा।''

कैसी अनन्य निष्ठा थी अमीर खुसरो की !

आज भी निजामुद्दीन औलिया की मुजाहिर के पास ही उनके सत्‌शिष्य अमीर खुसरो की मुजाहिर उनकी गुरुनिष्ठा, गुरुभक्ति की खबर दे रही है।

महत्त्वपूर्ण निवेदन : सदस्यों के डाक पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य ११७वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया जुलाई २००२ के अंत तक अपना नया पता भेज दें।

मंत्रजाप-महिमा

(सिद्धांतों को समझने के लिए शास्त्रों-पुराणों में कथा-वार्ताएँ हैं, उसीके कुछ अंशरूप, रोहतक मार्च २००१ में हुए सत्संग-ज्ञानयज्ञ में अपने प्यारों को मंत्रजाप के विषय में पूज्य बापूजी समझा रहे हैं :)

पुराण में कथा आती है : कौशिकवंशी पिप्पलाद का पुत्र मंत्रदीक्षा लेकर गुरुमंत्र जपने लगा। कई वर्षों तक संयमपूर्वक एकान्त में जप करते-करते उसके शरीर के कण देदीप्यमान हो उठे। उसका तप बढ़ गया तब स्वर्ग से इन्द्र आये और उससे कहने लगे : ''कौशिकवंशी पिप्पलाद-पुत्र ! तुम अपना मनोरथ कह दो। धरती पर जो संभव नहीं है ऐसे ऊँचे स्वर्ग के भोग तुम्हारे लिए हाजिर हैं। तुम स्वर्ग के अधिकारी हो।''

पिप्पलाद-पुत्र ने सत्संग में सुन रखा था कि स्वर्ग के सुख-भोग तब तक मिलते हैं जब तक पुण्य रहते हैं। पुण्य नष्ट होने पर जीव स्वर्गलोक से गिरा दिया जाता है। उसने कहा : ''इन्द्रदेव ! आपका स्वागत है। स्वर्ग का सुख मुझे नहीं चाहिए। मुझे मंत्रजाप का फल अप्सराएँ, नंदनवन या स्वर्ग के भोग के रूप में नहीं चाहिए। अगर आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मंत्र में मेरी प्रीति और बढ़ जाय, इतनी कृपा करें।''

इन्द्रदेव ने कहा : ''पिप्पलाद-पुत्र ! तुम्हारा तप इतना बढ़ चुका है कि धर्म स्वयं आकृति लेकर तुम्हारे पास आयेंगे, काल भी आयेंगे, मृत्युदेव भी आयेंगे, यम भी आयेंगे... लो देखो ये सब सामने ही प्रगट हो गये हैं।''

धर्मराज ने कहा : ''हे पिप्पलादवंशी ! तुम्हारा मंगल हो। तुमने खूब एकाग्रता से, संयम से, श्रद्धा से मंत्रजाप किया है। अब तुम स्वयं धर्म का स्वरूप हो गये हो। मैं साकाररूप से तुम्हारा स्वागत करने के लिए आया हूँ। तुम धर्म का जो भी फल भोगना चाहो, स्वर्ग अथवा उससे भी ऊपर के लोकों के द्वार तुम्हारे लिए खुले हैं।''

पिप्पलाद-पुत्र : ''मैं किसी लोक में जाकर सुखी होऊँ, उसकी अपेक्षा यहीं गुरुमंत्र-जाप करके सुख को प्राप्त हो रहा हूँ।''

यमराज : ''तुम यह शरीर सदा के लिए नहीं रख सकते। ये कालदेवता भी आये हैं।''

कालदेवता : ''पिप्पलाद-पुत्र ! तुम यह शरीर सदा के लिए नहीं रख सकते, यह शरीर तो छोड़ना ही पड़ेगा। मेरे पास खड़े ये मृत्युदेव हैं।''

मृत्युदेव : ''हाँ, हाँ, कालदेवता ठीक कह रहे हैं, धर्मराज भी ठीक ही कह रहे हैं।''

राजा इक्ष्वाकु तीर्थ करके उसी समय वहाँसे लौट रहे थे। उन्होंने देखा कि इन्द्र, काल, मृत्यु, यम और धर्मराज साकाररूप में पिप्पलाद-पुत्र के आश्रम में पधारे हैं और उसे कुछ कह रहे हैं।

राजा इक्ष्वाकु ने उन पाँचों को प्रणाम किया और इस कौशिकवंशी जापक ने अर्घ्य-पाद्य से सबका सत्कार किया।

राजा ने जापक से कहा : ''आप मंत्रजप में इतने तल्लीन हो गये कि उसके प्रभाव से ये देवता साकाररूप लेकर आपके आश्रम में पधारे हैं। महाराज ! मैं राजा इक्ष्वाकु हूँ। आपको जो चाहिए, माँग लें। जितना धन चाहिए, माँग लें, जितने हाथी, जितने घोड़े चाहिए, माँग लें... और मुझसे जो एक बार माँगता है उसे फिर कहीं माँगना नहीं पड़ता।''

पिप्पलाद-पुत्र : ''मुझे कुछ नहीं माँगना। मेरे पास तो गुरुमंत्र का वह धन है कि आप जो चाहो माँग लो। मैं अब माँगनेवालों की जगह पर नहीं हूँ। अब तो आपको जो चाहिए, माँग लो।''

राजा इक्ष्वाकु : ''हे ब्राह्मणदेव ! यदि आप देना ही चाहते हैं तो आपने जो मंत्रजाप किया है, उसमें से सौ वर्ष के मंत्रजाप का फल मुझे दे दें।''

पिप्पलाद-पुत्र ने हाथ में जल लिया और सौ वर्ष के जप का फल संकल्प करके राजा को दे दिया।

राजा ने पूछा : ''इसका फल क्या है ?''

पिप्पलाद-पुत्र : ''इसका मुझे पता नहीं है।''

राजा : ''जिसके फल का पता नहीं है वह लेकर मैं क्या करूँगा और लोग बोलेंगे कि क्षत्रिय ने ब्राह्मण से दान ले लिया। मेरी बदनामी होगी।''

पिप्पलाद-पुत्र : ''आपने माँगा और मैंने दे दिया। राजन् ! अब अपने वचन से न डिगो, नहीं तो आपकी अपकीर्ति होगी। दी हुई चीज हम वापस नहीं लेते।''

राजा : ''मैं कैसे लूँ ? मेरी बदनामी होगी कि क्षत्रिय ने ब्राह्मण से दान ले लिया। दान के फल का भी आपको पता नहीं है।''

पिप्पलाद-पुत्र : ''मुझे मेरे गुरुदेव ने मंत्र दिया और कहा : 'जप करो' मैंने स्वार्थ से तो जप किया नहीं। गुरु के वचन मानकर जप किये हैं। मैंने यम आदि देवों को बुलाया नहीं, अपने-आप पधारे हैं। मैंने आपको भी बुलाया नहीं, आप भी अपने-आप पधारे हो। मैंने तो केवल गुरुवचनों को स्मरण में रखा कि : 'बेटा ! मंत्र जपते रहना। सब अपने-आप हो जायेगा।' ये देवता अपने-आप पधारे हैं ! इसके आगे मंत्रजाप का क्या फल है, वह मैं नहीं जानता।''

राजा : ''कुछ भी हो आप अपना फल वापस ले लें।''

पिप्पलाद-पुत्र : ''मैं वापस नहीं लूँगा चाहे कुछ भी हो । लोग आपकी धर्मनिष्ठा पर लांछन लगायेंगे कि एक बार वचन लेकर चीज ली और वापस लौटा दी। मुझे झूठा सिद्ध करने के लिए आप दबाव न डालें। दिया हुआ दान वापस ले लेना बड़ा भारी अपराध है, बड़ा भारी पाप है।''

मंत्रजाप की कितनी बड़ी महिमा है ! परमात्मदेव के अधीन सारा जगत है और मंत्र के अधीन वह परमात्मदेव है।

देवाधिनजगत्सर्वं मंत्राधिनश्च देवता।

इतने में भगवान नारायण, भगवान शिव और भगवान ब्रह्माजी आये और बोले : ''कौशिकवंशी पिप्पलाद-पुत्र ! तुम्हारा मंगल हो। अब तुम्हारा समय पूर्ण हो गया। तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारा और हमारा संवाद जो सुनेगा उसका भी कल्याण होगा।''

सब देव अंतर्धान हो गये। शरीर छोड़ने का समय निकट जानकर पिप्पलाद-पुत्र तीन आचमन लेकर बैठ गये, प्राणायाम किये। प्राणों को नाभि तक नीचे ले गये। मूलाधार केन्द्र से अपनी मनःवृत्ति को ऊपर लाये। फिर स्वाधिष्ठान, मणिपुर केन्द्र से अनाहत केन्द्र में लाये, फिर आज्ञाचक्र में लाये। प्रकाश... प्रकाश... देदीप्यमान प्रकाश... तत्पश्चात् अपनी मनःवृत्ति को सहस्रार में लाये और प्राणों को रोककर दृढ़ भावना की कि : 'यह शरीर अब भले छूटे।'

देखते-ही-देखते उनके ब्रह्मरन्ध्र से एक ज्योति निकली। आकाश में देवताओं ने दुन्दुभियाँ बजायीं और फूलों की वृष्टि की : 'साधो ! साधो ! साधो !...' की ध्वनि गूँज उठी।

वह दिव्य ज्योति ब्रह्मलोक में गयी। भगवान ब्रह्माजी उठ खड़े हुए और दिव्य ज्योतिस्वरूप उन ऋषि का अभिवादन करके उन्हें अपने सिंहासन पर बैठाया।

जिस इक्ष्वाकु को पिप्पलाद-पुत्र अपने जप का फल दे बैठे थे, उनकी भी जीवज्योति इसी तरह ब्रह्मलोक में पहुँची। ब्रह्माजी ने इक्ष्वाकु का भी सत्कार किया।

देवतागण, ऋषिगण, मरुद्गण सब एकत्रित हुए और मंत्रजाप की यह महान और अत्यंत गूढ़ फलश्रुति सुनकर प्रशंसा करने लगे। ब्रह्मलोक, विष्णुलोक तथा शिवलोक के लोकपालों ने भी पिप्पलाद की प्रशंसा की।

जिस परमेश्वर की सत्ता से ब्रह्मा, विष्णु, महेश प्रगट हुए और जिसकी सत्ता से वे क्रमशः सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति व संहार करते हैं, उसी परमेश्वर-सत्ता में उन दोनों की ब्रह्मज्योति एक होकर व्यापक सच्चिदानंद स्वरूपमय हो गयी !

कैसी अद्भुत है निःस्वार्थ मंत्रजाप की महिमा !

विपरीत आस्था

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ❊

जिससे सब दिखता है उस परमेश्वर में यदि मनुष्य की आस्था हो जाय तो उसका परम कल्याण हो जाय लेकिन दुर्भाग्य यह है कि जो दिखता है उसमें आस्था हो जाती है । यह आस्था विपरीत आस्था है लेकिन इस आस्था में ही जीवन पूरा हो जाता है ।

एक सेठ बच्चों के खेलने के लिए रबर का साढ़े चार फीट का एक सुंदर साँप ले आये । साँप के मुँह में जीभ की तरह एक तार भी थी । दिनभर तो बच्चे उस साँप से खेलते रहे, फिर उसे बरामदे में यूँ ही छोड़कर चले गये ।

रात्रि में सेठजी लघुशंका के लिए निकले । स्नानघर जाकर जल्दी-जल्दी वापस आने लगे तो उसी खिलौने के साँप पर उनका पैर पड़ गया और उसकी जीभ की जगह जो तार लगी हुई थी, उसकी नोंक सेठ के पैर में चुभ गयी और थोड़ा खून भी निकल गया । सेठ ने देखा कि 'हाय रे... साँप !' और सुन भी रखा है कि साँप काटता है तो आदमी मर जाता है । 'साँप ने काटा है' यह सोचकर परिवार के लोगों ने सेठ को अस्पताल में भर्ती कर दिया ।

उनकी तबियत बड़ी गंभीर हो गयी । रक्तचाप (बी.पी.) घट गया । रात्रि के दो बजे से इलाज हो रहा था किंतु नाड़ियाँ जवाब देने लगीं । इतने में शल्य-चिकित्सक (सर्जन) आया और उसने सेठ से पूछा :

''क्या हुआ ? कैसे हुआ ?''

सेठ बोले : ''रात्रि को लघुशंका के लिए निकला । जाते समय तो कुछ दिखा नहीं, फिर क्या पता कहाँसे साँप आया और उसने काट लिया ।''

शल्य-चिकित्सक : ''जाँच करो कि साँप कहाँ से आया ? किसी दूसरे को न काट ले ।''

जाँच करने के लिए आदमी भेजा तो पता चला कि सेठजी कल जो साँप लाये थे, खिलौने का, उसकी जीभ में रक्त लगा है । साँप लाकर सेठ को दिखाया तो सेठ बोल उठे : ''अरे ! इसे तो मैं ही लाया था ।''

सेठ उठकर घर की ओर रवाना हो गये । मानों, कुछ हुआ ही नहीं । विपरीत आस्था से मान बैठे थे कि 'साँप ने काटा है...' तो सेठ की हालत गंभीर हो गयी किंतु विवेक जागा तो हालत ठीक हो गयी और सेठ बच गये ।

ऐसे ही हमें भय लगता है कि 'मौत आयेगी और हम मर जायेंगे...' लेकिन अगर यह ज्ञान हो जाय कि 'मौत होती है मरनेवाले शरीर की, मेरी (आत्मा की) मौत तो कभी हो नहीं सकती...' और यह ज्ञान अगर मौत के समय भी रहे तो मौत की क्या मजाल कि हमको मारे ? मौत आयेगी तो शरीर की आयेगी । ऐसे हजारों शरीर आये और गये... हमको मौत मारे यह मौत में दम नहीं । ऐसा चिंतन-मनन करके उस अमर आत्मा के अनुभवस्वरूप में आस्था पा लेनी चाहिए ।

करम प्रधान बिस्व करि राखा ।
जो जस करइ सो तस फलु चाखा ॥

कर्म का सिद्धांत अकाट्य है । जैसे काँटे-से-काँटा निकलता है, ऐसे ही अच्छे कर्मों से बुरे कर्मों का प्रायश्चित होता है । सबसे अच्छा कर्म है जीवनदाता परब्रह्म परमात्मा को सर्वथा समर्पित हो जाना । पूर्व काल में कैसे भी बुरे कर्म हो गये हों उन कर्मों का प्रायश्चित करके फिरसे ऐसी गलती न हो जाय ऐसा दृढ़ संकल्प करना चाहिए । जिसके प्रति बुरे कर्म हो गये हों उनसे क्षमायाचना करके अपना अन्त:करण उज्ज्वल करके मौत से पहले जीवनदाता से मुलाकात कर लेनी चाहिए ।

(आश्रम की 'निश्चिन्त जीवन' पुस्तक से)

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

गुरुमन्त्रपरित्यागी...

महाराष्ट्र में समर्थ रामदासजी प्रसिद्ध संत हो गये । वे छत्रपति शिवाजी के गुरु थे । उनके पास भीतर-बाहर दोनों प्रकार का वैभव था । जबकि तुकारामजी महाराज सीधे-सादे, सरल संत थे । उनका नियम था कि कहीं भी कीर्तन करने जाते तो कीर्तन करानेवालों के घर का भी हलवा-पूरी आदि कुछ भी नहीं लेते थे । जाने के लिए रथ आदि का उपयोग नहीं करते वरन् पैदल ही जाते थे । वे बड़ा संयमी और तपस्वी जीवन जीते थे ।

संत तुकारामजी की मण्डली के एक शिष्य ने देखा कि समर्थ रामदासजी की मण्डली के लोग बड़े मजे से जीते हैं । वे अच्छे कपड़े पहनते हैं, हलवा-पूरी खाते हैं । समर्थ शिवाजी जैसे राजा के गुरु हैं, अतः उनके पास खूब अमन-चमन है और उनके शिष्यों को भी खूब मान मिलता है । जबकि हमारे गुरुदेव तुकारामजी के पास तो कुछ भी नहीं है । न हलवा-पूरी, न गादी-तकिये...

संतों के पास सब प्रकार के लोग होते हैं क्योंकि सब संसार से ही तो आते हैं । आश्रम में आनेवाले सब अच्छे ही होते हैं क्या ? इसका मतलब सब खराब हैं - ऐसी बात नहीं है और सब दूध के धोये हुए हैं - ऐसी बात भी नहीं है, फिर भी उन लोगों को धन्यवाद है कि वे संत के पास तो आ गये ।

कभी-कभी राजसी-तामसी भक्तों को देखकर सात्त्विक भक्तों की श्रद्धा भी डगमगाने लगती है लेकिन उन्हें चाहिए कि वे डगमगायें नहीं, वरन् अपने को समझायें :

वैरी भयंकर हैं विषय, कीड़ा न बन तू भोग का ।
चंचलपना मन का मिटा, अभ्यास करके योग का ॥
यह चित्त होता मुक्त है, सब ब्रह्म है यह जानकर ।
कर दरश सबमें ब्रह्म का, सर्वात्म अनुसंधान कर ॥

अपने भक्त का विवेक दृढ़ करने के लिए भगवान श्रीकृष्ण 'भगवद्गीता' में कहते हैं :

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च ।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥

'इस लोक और परलोक के संपूर्ण भोगों में आसक्ति का अभाव और अहंकार का भी अभाव, जन्म-मृत्यु, जरा और रोग आदि में दुःख और दोषों का बार-बार विचार करना चाहिए ।' **(गीता : १३.८)**

'तुकारामजी के पास तो कोई सुविधा नहीं है' - ऐसा फरियादात्मक चिंतन करते-करते उस शिष्य को समर्थ रामदास की मण्डली के प्रति आकर्षण हुआ और तुकारामजी का वह शिष्य समर्थ के पास गया । समर्थ को प्रणाम करके उसने कहा :

"महाराज ! हमें अपने शिष्य के रूप में स्वीकार कर लीजिये । हम आपकी मण्डली में रहेंगे, कीर्तन आदि करेंगे, सेवा करेंगे ।"

समर्थ : "तू पहले किसका शिष्य था ?"

"तुकारामजी महाराज का ।"

श्री समर्थ ने सोचा कि 'जिनकी सत्य में प्रीति है ऐसे तुकारामजी जैसे गुरु का त्याग ! आत्म-साक्षात्कारी पुरुष जहाँ हैं वहाँ तो वैकुंठ है । ऐसे महापुरुष का त्याग करने की बात इसको कैसे सूझी ?'

समर्थ : "तुकारामजी का शिष्य होते हुए मैं तुझे मंत्र कैसे दे सकता हूँ ? अगर मुझसे मंत्र लेना है, मेरा शिष्य बनना है तो तुकारामजी की कंठी तुकारामजी को वापस कर दे और उनका दिया हुआ मंत्र भी उन्हें लौटा कर आ ।"

समर्थ ने सत्य समझाने के लिए ऐसा कहा था । वह तो खुश हो गया कि 'मैं अभी तुकारामजी का त्याग करके आता हूँ और उनका दिया मंत्र और कंठी उनको लौटा देता हूँ ।'

'गुरुभक्तियोग' में लिखा है कि 'एक बार

सद्गुरु करने के बाद उनका कभी भी त्याग नहीं करना चाहिए। ऐसा करे, इससे तो अच्छा है कि पहले से ही गुरु न करे, चौरासी का चक्कर खाता रहे। जन्म-मृत्यु में भटकता रहे।'

'श्रीगुरुगीता' में भगवान शिवजी कहते हैं :

गुरुत्यागाद् भवेन्मृत्युर्मन्त्रत्यागाद्दरिद्रता।
गुरुमन्त्रपरित्यागी रौरवं नरकं व्रजेत्॥

गुरु का त्याग करने से आध्यात्मिक मृत्यु होती है। मंत्र को छोड़ने से दरिद्रता आती है और गुरु तथा मंत्र दोनों का त्याग करने से रौरव नरक मिलता है।

वह शिष्य तुकारामजी के पास जाकर बोला : ''महाराज! अब मुझे आपका शिष्य नहीं रहना है।''

तुकारामजी ने कहा : ''मैंने तुझे शिष्य बनाया ही कब था ? तू अपने-आप बना था, भाई ! मैंने कहाँ तुझे चिट्ठी लिखी थी कि आ जा। मैंने कहाँ तुझे जबरदस्ती कंठी पहनायी थी। कंठी तो तूने स्वयं अपने हाथों से बाँधी थी और मेरे गुरु ने जो मंत्र दिया है, वही मैंने तुझे सुना दिया था। इसमें मेरा तो कुछ भी नहीं है।''

कैसी निरभिमानिता ! कैसी करुणा !

''महाराज ! मुझे आपकी कंठी नहीं चाहिए।''

तुकारामजी : ''नहीं चाहिए तो तोड़ दे।''

उसने तुरंत कंठी तोड़ दी और बोला :

''महाराज ! अब अपना मंत्र भी ले लो।''

तुकारामजी : ''मंत्र मेरा नहीं, मेरे गुरुदेव का मंत्र है। 'आपाजी चैतन्य' का प्रसाद है। मेरा तो कुछ नहीं है।''

''मुझे नहीं चाहिए आपका मंत्र, मुझे तो दूसरे गुरु करने हैं।''

तुकारामजी : ''मेरे सामने मंत्र बोलकर पत्थर पर थूक दे। मंत्र का त्याग हो जायेगा।''

उस अभागे ने गुरुमंत्र त्यागने के लिए मंत्र बोलकर पत्थर पर थूक दिया। इतने में क्या देखता है कि वह मंत्र पत्थर पर अंकित हो गया !

शिष्य के कल्याण हेतु तुकारामजी के संकल्प ने काम किया तभी मंत्र पत्थर पर अंकित हुआ। कैसी होती है महापुरुषों की करुणा-कृपा ! शिष्य के कल्याण के लिए वे कैसी-कैसी युक्तियाँ आजमाते हैं ! फिर भी अभागे शिष्य समझ नहीं पाते।

वह समर्थ के पास गया और बोला : ''महाराज ! मैं मंत्र का त्याग करके आया और कंठी भी तोड़ दी। अब आप मुझे शिष्य बना लीजिये।''

समर्थ ने पूछा : ''मंत्र का त्याग किया उस समय क्या हुआ था ?''

''मंत्र पत्थर पर अंकित हो गया था।''

समर्थ : ''ऐसे महान गुरुदेव ! जिनका दिया हुआ मंत्र पत्थर पर अंकित हो गया ! पत्थर पर भी उनके दिये मंत्र का प्रभाव पड़ा किन्तु कमबख्त ! तुझ पर कुछ असर न हुआ तो मेरे मंत्र का भी क्या असर होगा ? तू तो पत्थर से भी गया-बीता है तो इधर क्या करेगा ? हलवा-पूरी खाने के लिए साधु बना है क्या ?''

''मैंने अपने गुरु का त्याग कर दिया और आपने भी मुझे लटकता रखा ?''

समर्थ : ''तेरे जैसे तो लटकते ही रहेंगे। तेरे लक्षण ही ऐसे हैं। तेरे जैसे गुरुद्रोही को मैं शिष्य बनाऊँगा क्या ? मुझे कहाँ अपराधी बनना है ?''

आत्मज्ञानी सद्गुरु का दिया हुआ मंत्र त्यागने से मनुष्य दरिद्र हो जाता है। मंत्र त्यागने से मनुष्य हृदय का अंधा हो जाता है।

कहते हैं : 'गुरु ने तुमको जो मार्ग बताया, उस मार्ग पर तुम बीसों साल चले, साधना की; फिर यदि गुरु में अश्रद्धा और दोषदर्शन होने लगा तो वहीं पहुँच जाओगे, जहाँसे चलना शुरू किया था। बीसों साल की कमाई का नाश हो जायेगा।'

''महाराज ! मुझे स्वीकार करने की कृपा करें।''

समर्थ : ''नहीं, यह संभव नहीं है।''

वह शिष्य बहुत रोया-गिड़गिड़ाया। तब करुणा करके समर्थ ने कहा : ''तुकारामजी उदारात्मा हैं। उनसे जाकर मेरी तरफ से प्रार्थना करना कि 'समर्थ ने प्रणाम कहा है' और मुझे क्षमा करें।''

वह गया तुकारामजी के पास और प्रार्थना करने लगा। तुकारामजी ने सोचा कि समर्थ का भेजा हुआ है तो मैं कैसे इनकार करूँ ? बोले :

''अच्छा, भाई ! तू आया था, तूने कंठी माँगी थी मैंने दे दी, ठीक है । बाद में तूने ही कंठी तोड़ दी । अब फिर से तू ही आया है तो फिर से दे देते हैं । समर्थ ने भेजा है तो चलो ठीक है । समर्थ की जय हो ।''

संत-महापुरुष उदारात्मा होते हैं । ऐसे भटके हुए लोगों को थोड़ा सबक सिखाकर ठिकाने लगा देते हैं । साधक को गिरने से बचा लेते हैं । समर्थ ने समझाया तो समझ गया क्योंकि थोड़ी-बहुत भक्ति की हुई थी । आखिर तो तुकारामजी का शिष्य था, उसमें कुछ सत्त्व तो था ही ।

जिसके जीवन में सत्त्व नहीं होता, गुरु का आदर नहीं होता वह कितना भी संसार की चीज़ों से बचा हुआ दिखे, फिर भी उसका कोई बचाव नहीं होता । उसको यमदूत घसीटकर ले जाते हैं फिर कभी बैल बनता है, कभी पेड़ बनता है, कभी शूकर-कूकर बनता है... बेचारा जीव न जाने कितने-कितने धक्के खाता है और जिसके जीवन में सत्त्व होता है, जो गुरुआज्ञा में चलता है वह फिसलते-फिसलते भी बच जाता है ।

जिसे सद्गुरु मिल जाते हैं और जो सद्गुरु के चरणों में अपना जीवन न्योछावर कर देता है, वह चौरासी के चक्कर से अवश्य बच जाता है ।

अनेक कष्ट सहकर भी यदि सद्गुरु की प्राप्ति होती है तो सौदा सस्ता है । कबीरजी ने कहा भी है :

यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान ।
सिर दीजे सद्गुरु मिले, तो भी सस्ता जान ॥

*

गुरु-अपमान का फल !

निश्चलदासजी महाराज बहुत ऊँची कमाई के धनी थे । उनका ग्रंथ 'श्री विचारसागर' मेरे गुरुदेव को बहुत अच्छा लगता था । मेरे गुरुदेव मुझे 'श्री विचारसागर' पढ़ाते थे ।

ईश्वर तै गुरु में अधिक, धारै भक्ति सुजान ।
बिन गुरुभक्ति प्रवीण हूँ, लहै न आतमज्ञान ॥

'शिष्य को ईश्वर से भी अधिक गुरु की भक्ति करनी चाहिए क्योंकि कोई मनुष्य समस्त शास्त्रों में प्रवीण हो तथापि गुरुभक्ति के बिना आत्मज्ञान नहीं पा सकता ।' **(श्री विचारसागर : ३.७)**

ईश्वर से भी अधिक गुरु में प्रीति क्यों ?

क्योंकि ईश्वर में प्रीति करने से भावना का फल तो मिलेगा लेकिन ईश्वर मंदिर में मूर्ति के रूप में हैं, कुछ बोलेंगे नहीं । चाहे कोई सिगरेट पीकर मंदिर में जाय या शराब पीकर जाय, मंदिर की मूर्ति तो शांत ही रहेगी परंतु गुरु तो कभी डाँटेंगे-फटकारेंगे तो कभी पुचकारेंगे । कभी कैसे तो कभी कैसे । तुम्हारे दोष छुड़ाने के लिए ईश्वर से भी अधिक गुरु ध्यान देते हैं क्योंकि गुरु के अंदर ईश्वर साकार हैं । ईश्वर से तो केवल श्रद्धा का फल मिलेगा किन्तु गुरु में श्रद्धा रखोगे तो श्रद्धा के साथ-साथ साधनोपदेश, ज्ञानोपदेश का फल भी मिलेगा और गढ़ाई होगी सो अलग ।

एक ब्रह्मज्ञानी संत भोले बाबा ने लिखा है :

निर्जीव सारे शास्त्र सच्चा मार्ग ही दिखलाय हैं ।
दृढ ग्रन्थि चिज्जड़ खोलने की युक्ति नहीं बतलाय हैं ॥
निस्संग होने के सबब से ईश भी रुक जाय है ।
गुरु गाँठ खोलन रीति तो गुरुदेव ही बतलाय हैं ॥
ईश्वर कृपा होवे तभी सद्गुरु कृपा जब होय है ।
सद्गुरु कृपा बिन ईश भी नहीं मैल मन का धोय है ॥

अनजाने में भी ऐसे सद्गुरु के प्रति कोई अपराध न हो जाय, इसका ध्यान रखना चाहिए ।

साधु निश्चलदासजी के श्रीचरणों में एक सैय्यद गया । उसने उनसे दीक्षा भी ले ली । निश्चलदासजी जाट थे । लोगों ने सैय्यद से कहा :

''तू सैय्यद है और हिन्दू का शिष्य बना ?''

सैय्यद ने कहा : ''जाट और सैय्यद यह तो शरीर की जाति है । संत तो आखिर संत होते हैं । संतों के पास भीतर का आत्मखजाना होता है । कीचड़ में सोना है तो क्या सोना नहीं लेना चाहिए ?

कंचन होय कीच में, विष में अमृत होय ।
विद्या नारी नीच में, चारों लीजिये सोय ॥

जाट-शरीर में भी यदि ज्ञान, ध्यान, भक्ति, प्रेम है तो क्या नहीं लेना चाहिए ? इसलिए मैंने निश्चलदासजी को गुरु बनाया तो क्या घाटा

किया ? मुझे क्या हानि हुई ? उनसे तो लाभ ही हुआ है। उनसे मुझे ज्ञान मिलता है।''

निश्चलदासजी को इस बात का पता चला कि लोगों ने सैय्यद को ऐसा कहा और उसने बदले में कहा कि : 'कीचड़ में सोना हो तो भी ले लेना चाहिए।'

सैय्यद आया तो निश्चलदासजी ने पूछा :

''तुमने अमुक लोगों के बीच में मेरे विषय में कुछ बोला था ?''

सैय्यद : ''जी हाँ।''

निश्चलदासजी : ''सुनाओ जरा।''

सैय्यद : ''गुरुजी ! लोग आपके प्रति मेरी श्रद्धा तोड़ रहे थे लेकिन मैंने और अच्छा जवाब दिया कि सोना यदि कीचड़ में हो तब भी ले लेना चाहिए।''

निश्चलदासजी : ''अरे दुष्ट ! धिक्कार है तुझे। तुझे कोई दूसरा दृष्टांत नहीं मिला ? गुरु को तू कीचड़ में बोलता है। जा, कीचड़ में से सोना खोजते रहना।''

गुरु की फटकार निकल गयी, बस हो गया। वह सैय्यद पागल-सा हो गया और सारी जिंदगी नालियाँ ही खोदता रह गया...

इसलिए सतत सावधानी रखें, कोई भी ऐसा कार्य न करें, न ही ऐसे वचन कहें जिससे गुरु के हृदय को ठेस पहुँचे। 'गुरुगीता' में भी आता है :

शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन।
लब्ध्वा कुलगुरुं सम्यग्गुरुमेव समाश्रयेत्॥

यदि शिवजी नाराज हो जायें तो गुरुदेव बचानेवाले हैं किन्तु गुरुदेव नाराज हो जायें तो बचानेवाला कोई नहीं। अतः गुरुदेव को संप्राप्त करके सदा उनकी शरण में, उनकी आज्ञा में रहना चाहिए।

निज बुद्धि का अभिमान तज, गुरुवाक्य सच्चे जानता।
मन, कर्म, वाचा भक्त गुरु का, ईश गुरु को मानता॥
गुरु वाक्य माँहिं चित्त दे, गुरु चित्त ही बन जावता।
अर्पण करे सर्वस्व अपना, शिष्य सो कहलावता॥

- भोले बाबा.

एकनाथी वचनामृत

✲ शिष्य को जो सद्वस्तु तक पहुँचा दें उन्हें ही भगवान श्रीकृष्ण सद्गुरु मानते हैं। गुरु ही देव हैं, गुरु ही माता-पिता हैं, गुरु ही आत्मा और ईश्वर हैं, गुरु ही पूर्णतया परमात्मा हैं तथा तात्त्विक दृष्टि से देखने पर गुरु ही परब्रह्म हैं।

✲ गुरु की शोभा के लिए कोई उपमा ढूँढ़ने के निमित्त जग में जायें तो वैसी कोई वस्तु दुनिया में नहीं मिल सकती। भाग्य के बिना गुरु से भेंट होनी सम्भव नहीं।

✲ निष्काम पुण्यराशि, निस्सीम वैराग्य, नित्यानित्य विवेक से युक्त प्रेम जब किसीके पास हो तभी सद्गुरु-कृपा साक्षात् रूप से हाथ लगती है। सद्गुरु-कृपा के हाथ लगते ही भक्ति का भंडार खुल जाता है और उसके सम्मुख कलिकाल भी भाग खड़ा होता है तो बेचारा संसार-भय उसका क्या बिगाड़ेगा ?

✲ अधोद्वार से जन्म देनेवाले गर्भवास को समाप्त करनेवाले जो सद्गुरु हैं, वे ही शिष्यों के वास्तविक माता-पिता होते हैं।

✲ गुरु को यदि कुलदेवता कहें तो उनकी पूज्यता केवल कुलधर्म के कर्मों तक ही सीमित होती है, लेकिन गुरु सब कर्मों में अकर्त्ता रहने के कारण सदा-सर्वदा और सर्वोपरि पूज्य होते हैं।

✲ सद्गुरु की तुलना देव से भी नहीं की जा सकती।

✲ गुरु की महानता अगाध है। उनकी कोई

उपमा नहीं हो सकती ।

* गुरु को मनुष्य-भाव से कभी भी नहीं देखना चाहिए । ऐसी भावार्थ बुद्धि रहने पर सत्‌शिष्य की सहजरूप से चित्तशुद्धि हो जाती है ।

* गुरुचरणों में जिसकी निस्सीम भक्ति होती है, उसके मनोरथ देव स्वयं पूर्ण करते हैं । इसका कारण यह है कि देव स्वयं गुरु की आज्ञा का पालन करते हैं । गुरु-वाक्य के द्वारा ही देव जड़-मूढ़ों का भी उद्धार करते हैं । ब्रह्म-भावना से जो गुरु की सेवा करते हैं, देव उनके भी आज्ञाधारक होते हैं ।

* यह निश्चित ध्यान रखना चाहिए कि भवभय का मुख्य कारण अपनी स्वयं की मनोकल्पना ही होती है । उस मन का निरोध करने के लिए सद्‌गुरु व उनके वचनों में दृढ़निष्ठा होनी आवश्यक है । यह ध्यान रखकर बुद्धिमान शिष्य गुरुवचनों में विश्वास करके विवेक और वैराग्य के बल से अपने मन को जीत लेता है ।

* सद्‌गुरु-वचन आत्मबोध उत्पन्न करके मन को सावधान कर देते हैं । मन अपने चंचलपने से जिस-जिस विषय का चिंतन करके जो-जो देखता है, वह सब सद्‌गुरु तथा उनके वचनों में दृढ़ निष्ठा रखने पर ब्रह्मार्पण ही हो जाता है । विषय-लोभी मन जिन-जिन पदार्थों का ध्यान करता है, वे सब गुरुकृपा के सामर्थ्य से परमार्थ रूप हो जाते हैं ।

*

दासबोध

* चार प्रकार की मुक्तियाँ होती हैं :

(१) सालोक्य (२) सामीप्य (३) सारूप्य और (४) सायुज्य । जिस देवता का भजन-पूजन किया, उसी देवता के लोक में निवास, इसे सालोक्य मुक्ति कहा जाता है ।

देवता के समीप रहना - यह सामीप्य मुक्ति है ।

प्रिय देवता के समान रूप प्राप्त होना - यह सारूप्य मुक्ति है ।

स्वर्गलोक में पुण्यों के समाप्त होने पर प्राणी को पुनः मृत्युलोक में धकेल दिया जाता है, अतः ये तीनों मुक्तियाँ विनाशी हैं । केवल सायुज्य मुक्ति अविनाशी और शाश्वत है । महाप्रलय में ब्रह्माण्ड डूब जायेगा, तब पृथ्वी, सुमेरु पर्वत, देवता और उनके लोक आदि सब नष्ट हो जायेंगे । ये सब चंचल हैं । निश्चय ही परब्रह्म मात्र शाश्वत है । उनके साथ तन्मयता अर्थात् सायुज्यता ही शाश्वत है ।

सायुज्य मुक्ति का कल्पांत में भी नाश नहीं होता । अन्य तीन मुक्तियाँ सालोक्य, सामीप्य और सारूप्य नाशवान हैं, पर तीनों लोकों का नाश होने पर भी सायुज्य मुक्ति का नाश नहीं हो सकता ।

सद्‌गुरु और उनके वचनों पर पूर्ण विश्वास होने पर ही शिष्य सायुज्य मुक्ति अर्थात् मोक्ष का अधिकारी होकर सांसारिक दुःखों से सदा के लिए छुटकारा पा सकता है और शाश्वत सुख को पा लेता है ।

* जो जीव और शिव, भक्त और ईश्वर का भेद दूर कर भक्त का भगवान से संयोग करा दें, वे ही सद्‌गुरु हैं ।

* इस संसाररूपी शेर ने जीवनरूपी बछड़े को भयभीत कर परमात्मारूपी गौ से छीन लिया है । अतः उस बछड़े का गौ से मिलाप करा देनेवाले ही सद्‌गुरु हैं ।

* मायाजाल में फँसकर संसार के दुःखों से पीड़ित हुए जीवों को शांति प्रदान करानेवाले सद्‌गुरु ही हैं ।

* वासनारूपी महानदी की बाढ़ में डूबते हुए दीनजनों को सद्‌गुरु ही बचाते हैं ।

* गर्भवास के कारण दुःख से तथा नाना प्रकार की विषय-वासनाओं के शिकार हुए भयभीत जीवों को ज्ञान देकर सद्‌गुरु ही सन्मार्ग पर लगाते हैं ।

* शब्दार्थों का अचूक विश्लेषण कर उनके सारभूत परमात्म-वस्तु का दर्शन करानेवाले अनाथों के नाथ सद्‌गुरु ही हैं ।

* जो एकदेशीय कल्पना से दीन बने हुए जीव को तत्काल 'तत्त्वमसि' इस महावाक्य का रहस्य

समझाकर ब्रह्मरूपता (देशातीत सत्ता) प्रदान करते हैं, वे ही सद्गुरु हैं।

* वेदों के अंतरंग में जो गूढ़ परमामृत ज्ञान है उसका वचनमात्र से शिष्य को पान करानेवाले सद्गुरु के सिवाय और कौन हो सकते हैं ? वेदशास्त्र और संत दोनों के अनुभव समान हैं और उन अनुभवों की एकरूपता प्राप्त करना यही सद्गुरु का स्वरूप है।

* जिनमें सद्विद्या के अनंत गुण हैं और जो शिष्य के प्रति अत्यंत आत्मीयता रखते हैं, ऐसे सद्गुरु का लाभ जिस शिष्य को मिल जाय, उसका ही जीवन सार्थक है और वही इस संसार में धन्य है। प्रत्येक मुमुक्षु और भक्त को ऐसे ही सदाचारी, पूर्णज्ञानी और लोकमंगल के लिए सेवारत सद्गुरु का आश्रय लेना चाहिए। लोगों के दिल में दिलबर का आनंद उभारनेवाले, मरने के बाद नहीं जीते-जी आत्मसुख में सराबोर करनेवाले सद्गुरु का आश्रय अहंकार, आसक्ति और ईर्ष्या छोड़कर लेना चाहिए।

*

योगीराज तैलंग स्वामी के वचनामृत

'गुरु' शब्द का अर्थ है- 'ग' शब्द से गतिदाता, 'र' शब्द से सिद्धिदाता और 'उ' शब्द से कर्त्ता, यानी जो गति-मुक्ति का मार्ग दिखाते हैं, उन्हें गुरु कहा जाता है, इसीलिए ईश्वर और गुरु में प्रभेद नहीं है।

ऐसे गुरु को कभी मनुष्यवत् नहीं समझना चाहिए। अगर गुरु पास में हों तो किसी भी देवता की अर्चना नहीं करनी चाहिए। अगर कोई करता है तो वह विफल हो जाता है।

गुरु ही कर्त्ता, गुरु ही विधाता है। गुरु के संतुष्ट होने पर सभी देवता संतुष्ट हो जाते हैं। 'ग' वर्ण उच्चारण करने पर महापातक नष्ट हो जाते हैं, 'उ' वर्ण उच्चारण करने पर इस जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं और 'रु' वर्ण के उच्चारण पर पूर्वजन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं।

गुरु का महत्त्व इसलिए है कि शिष्य को संसार-समुद्र से पार कराने की पूरी जिम्मेदारी उनकी है। इसके लिए भगवान के निकट वे उत्तरदायी होते हैं।

जो सर्वशास्त्रदर्शी, कार्यदक्ष, शास्त्रों के यथार्थ मर्म के ज्ञाता हों, सुभाषी हों, विकलांग न हों, जिनके दर्शन से लोक-कल्याण हो, जो जितेन्द्रिय हों, सत्यवादी, शीलवान, ब्रह्मवेत्ता, शान्त चित्त, मात-पितृ हित निरत, आश्रमी, देशवासी हों - ऐसे व्यक्ति को गुरु के रूप में वरण करना चाहिए।

सड़े-जले बीज से पौधे जन्म नहीं लेते, इसलिए बीज का चुनाव ठीक से करना चाहिए। सद्गुरु सहज ही नहीं मिलते। दीक्षा लेना साधारण बात नहीं है। उपयुक्त गुरु सर्वदा सुलभ न होने के कारण ही मानव की यह दुर्दशा हुई है।

प्राचीनकाल में उपयुक्त शिष्य काफी मिलते थे, इसलिए सद्गुरुओं का अभाव नहीं होता था। भगवान के लिए अगर तुम्हारा हृदय व्याकुल होगा तब निश्चित है कि भगवान तुम्हारे सहायक बनकर सद्गुरु से मुलाकात करा देंगे। सद्गुरु राह चलते नहीं मिलते। जब तक मन में सद्गुरु के लिए आशा बलवती न हो, तब तक सद्गुरु नहीं मिलते और दिल बेचैन रहता है। सत्शिष्य बने बिना सद्गुरु की महिमा पूरी तरह नहीं जान सकते।

*

रज्जब

रज्जब कूँ अज्जब मिल्या, गुरु दादू दातार।
दुख दरिद्र तबका गया, सुख संपत्ति अपार॥
गुरु दादू का हाथ सिर, हृदये त्रिभुवन-नाथ।
रज्जब डरिये कौन सूँ, मिलिया साईं साथ॥
जो प्राणी रुचि सूँ गहै, उर अंतरि गुरु-बैन।
भये रज्जब जुगजुग सुखी, सदा सु पावै चैन॥
जीव रच्या जगदीसनै, बाँध्या काया माहिं।
जन रज्जब मुकता किया, तौ गुरु सम कोइ नाहिं॥
सिला सँवारी राजनैं, ताहि नवैं सब कोइ।
रज्जब सिष मिल गुरु गढ़ै, सोइ पूजि किन होइ॥

गुरु ग्याता परजापती, सेवक माटीरूप।
रज्जब रज सूँ फेरिकै, घड़ि ले कुंभ अनूप ॥
ज्यूँ धोबी की धमस सहि, ऊजल होइ कुचीर।
त्यूँ सिष तालिब निरमला, मार सहै गुरु पीर ॥

*

सहजो बाई

राम तजूँ पै गुरु न बिसारूँ। गुरु के सम हरि को न निहारूँ ॥
हरि ने जन्म दियो जगमाहीं। गुरु ने आवागमन छुडाहीं ॥
हरि ने पाँच चोर दिये साथा। गुरु ने लई छुडाय अनाथा ॥
हरि ने कुटँब-जाल में गेरी। गुरु ने काटी ममता-बेरी ॥
हरि ने रोग भोग उरझायौ। गुरु जोगी कर सबै छुडायौ।
हरि ने कर्म भर्म भरमायौ। गुरु ने आतमरूप लखायौ।
हरि ने मोसूँ आप छिपायौ। गुरु दीप दै ताहि दिखायौ ॥
फिर हरि बंध मुक्ति गति लाये। गुरु ने सब ही भर्म मिटाये ॥
चरनदास पर तन मन वारूँ। गुरु न तजू हरि कूँ तजि डारूँ ॥

* * *

सतगुरु दाता सर्ब के, तू किर्पिन कंगाल।
गुरु-महिमा जानै नहीं, फँस्यौ मोह के जाल ॥

गुरुभक्ति मुक्तक

तुम्हीं बताओ गुरुवर मेरे, कैसे तुम्हें रिझायें,
अपना तुम्हें बनायें कैसे, दिल में तुम्हें बसायें।
विषयों का मन चिंतन करता, बार-बार संसार में फँसता,
ऐसी राह दिखाओ गुरुवर, शीघ्र आत्मसुख पायें ॥
जैसे भी हैं हम हैं तो तुम्हारे, गुरुवर हमको स्वीकार करो,
प्रभुभक्ति की तड़प जगाकर, भवसागर से पार करो।
हम अबोध बालक की नाईं, आप पिता परमेश्वर सद्गुरु,
पईयाँ पईयाँ चलेंगे कब तक, हमें सत्संग दे कर उद्धार करो ॥

- सुरेन्द्र शर्मा

रुचि के अनुसार तुम करते रहोगे तो समय बीत जायेगा, रुचि नहीं मिटेगी। यह रुचि है कि जरा-सा पा लें... जरा-सा भोग लें तो रुचि पूरी हो जाय। किन्तु ऐसा नहीं है। भोगने से रुचि गहरी उतर जायेगी। जगत का ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो रुचिकर हो और मिलता भी रहे। या तो पदार्थ नष्ट हो जायेगा या उससे उबान आ जायेगी। *- आश्रम की पुस्तक 'अनन्य योग' से*

गुरुभक्त बालक एकलव्य

निषादराज हिरण्यधनु का पुत्र एकलव्य एक दिन हस्तिनापुर आया और उसने उस समय के धनुर्विद्या के सर्वश्रेष्ठ आचार्य, कौरव-पाण्डवों के शस्त्र-गुरु द्रोणाचार्यजी के चरणों में दूर से साष्टांग प्रणाम किया। अपनी वेष-भूषा से ही वह अपने वर्ण की पहचान दे रहा था। आचार्य द्रोण ने जब उससे अपने पास आने का कारण पूछा, तब आचार्य द्रोण से उसने प्रार्थना की : "मैं आपके श्रीचरणों के समीप रहकर धनुर्विद्या की शिक्षा लेने आया हूँ।"

आचार्य संकोच में पड़ गये। उस समय कौरव तथा पाण्डव बालक थे और आचार्य उन्हें शिक्षा दे रहे थे। एक भील बालक को अपने साथ शिक्षा देना राजकुमारों को स्वीकार नहीं होता और यह उनकी मर्यादा के अनुरुप भी नहीं था। भीष्म पितामह को आचार्य ने राजकुमारों को ही शस्त्र-शिक्षा देने का वचन दे रखा था। अतएव उन्होंने कहा : "बेटा एकलव्य ! मुझे दुःख है कि मैं किसी द्विजेत्तर बालक को शस्त्र-शिक्षा नहीं दे सकता।"

एकलव्य ने तो द्रोणाचार्यजी को मन-ही-मन गुरु मान लिया था। जिन्हें गुरु मान लिया, उनकी किसी भी बात को सुनकर रोष या दोषदृष्टि करने की तो बात ही मन में कैसे आती ? भील एकलव्य के मन में भी निराशा नहीं हुई। उसने फिर आचार्य के सम्मुख भूमि पर लेटकर प्रणाम किया और बोला : "भगवन् ! मैंने तो आपको गुरुदेव मान लिया है। मेरे किसी काम से आपको संकोच हो, यह मैं नहीं चाहता। मुझे केवल आपकी कृपा चाहिए।"

बालक एकलव्य हस्तिनापुर से लौटकर घ

नहीं गया। वह वन में चला गया और वहाँ उसने द्रोणाचार्य की मिट्टी की मूर्ति बनायी। गुरुदेव की मूर्ति को टकटकी लगाकर देखता, प्रार्थना करता तथा आत्मरूप गुरु से प्रेरणा पाता और ब्रह्मविद्या में लग जाता। ज्ञान के एकमात्र दाता तो भगवान ही हैं। जहाँ अविचल श्रद्धा और दृढ़ निश्चय होता है, वहाँ सबके हृदय में रहनेवाले वे श्रीहरि गुरुरूप में या बिना बाहरी गुरु के भी ज्ञान का प्रकाश कर देते हैं। महीने-पर-महीने बीतते गये, एकलव्य का अभ्यास अखण्ड चलता रहा और वह महान धनुर्धर हो गया।

एक दिन द्रोणाचार्य अपने शिष्य पाण्डवों और कौरवों को धनुर्विद्या का अभ्यास कराने के लिए आखेट करने वन में ले गये। संयोगवश इनके साथ का एक कुत्ता भटकता हुआ एकलव्य के पास पहुँच गया और काले रंग के तथा विचित्र वेशधारी एकलव्य को देखकर भौंकने लगा। एकलव्य के केश बढ़ गये थे और उसके पास वस्त्र के स्थान पर व्याघ्र-चर्म ही था। वह उस समय अभ्यास कर रहा था। कुत्ते के भौंकने से अभ्यास में बाधा पड़ती देख उसने सात बाण चलाकर कुत्ते का मुख बंद कर दिया। कुत्ता भागता हुआ राजकुमारों के पास पहुँचा। सबने बड़े आश्चर्य से देखा कि बाणों से कुत्ते को कहीं भी चोट नहीं लगी है, किंतु वे बाण आड़े-तिरछे उसके मुख में इस प्रकार फँसे हैं कि कुत्ता भौंक नहीं सकता। बिना चोट पहुँचाये इस प्रकार कुत्ते के मुख में बाण भर देना बाण चलाने का बहुत बड़ा कौशल है। पाण्डवों में से अर्जुन इस हस्तकौशल को देखकर बहुत चकित हुए। उन्होंने द्रोणाचार्यजी से कहा : ''गुरुदेव ! आपका वरदान पाया था कि आप मुझे पृथ्वी का सबसे बड़ा धनुर्धर बना देंगे, किंतु इतना हस्तकौशल तो मुझमें भी नहीं है।''

''चलो ! हम लोग उसे ढूँढ़ें, जिसने ये बाण चलाये हैं।'' ऐसा कहकर द्रोणाचार्यजी ने सबको साथ लेकर उस बाण चलानेवाले को वन में ढूँढ़ना प्रारम्भ किया और वे एकलव्य के आश्रम पर पहुँच गये। एकलव्य आचार्य के चरणों में आकर गिर पड़ा। द्रोणाचार्य ने पूछा : ''सौम्य ! तुमने धनुर्विद्या का इतना उत्तम अभ्यास किससे प्राप्त किया है ?''

नम्रतापूर्वक एकलव्य ने हाथ जोड़कर कहा : ''भगवन् ! मैं तो आपके श्रीचरणों का ही दास हूँ।''

उसने आचार्य की मिट्टी की उस मूर्ति की ओर संकेत किया। द्रोणाचार्य ने कुछ सोचकर कहा : ''भद्र ! मुझे गुरुदक्षिणा नहीं दोगे ?''

''आज्ञा करें भगवन् !'' एकलव्य ने बहुत अधिक आनन्द का अनुभव करते हुए कहा।

द्रोणाचार्य ने कहा : ''मुझे तुम्हारे दाहिने हाथ का अँगूठा चाहिए !''

दाहिने हाथ का अँगूठा ! दाहिने हाथ का अँगूठा न रहे तो बाण चलाया ही कैसे जा सकता है ? इतने दिनों की अभिलाषा, इतना बड़ा परिश्रम, इतना अभ्यास - सब व्यर्थ हुआ जा रहा था, किंतु एकलव्य के मुख पर खेद की एक रेखा तक नहीं आयी। उस वीर गुरुभक्त बालक ने बायें हाथ में छुरा लिया और तुरंत अपने दाहिने हाथ का अँगूठा काटकर अपने हाथ में उठाकर गुरुदेव के सामने धर दिया।

भरे कण्ठ से द्रोणाचार्य ने कहा : ''पुत्र ! सृष्टि में धनुर्विद्या के अनेकों महान ज्ञाता हुए हैं और होंगे, किंतु मैं आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारे इस भव्य त्याग और गुरुभक्ति का सुयश सदा अमर रहेगा ! ऊँची आत्माएँ, संत और भक्त भी तुम्हारी गुरुभक्ति का यशोगान करेंगे।''

हे साधक ! तथाकथित मित्रों से, सांसारिक व्यक्तियों से अपने को बचाकर सदा एकाकी रहना। यह तेरी साधना की परम माँग है। जब-जब साधक गिरे हैं तो तुच्छ सुखों और मित्रों के द्वारा ही गिरे हैं। सुख की लालच मिटाने के लिए यथायोग्य निष्काम कर्म करने के बाद निष्काम कर्मों से भी समय बचाकर एकान्तवास, लघु भोजन, देखना, सुनना आदि इन्द्रियों के अल्प आहार करते हुए साधक को कठोर साधना में उत्साहपूर्वक संलग्न हो जाना चाहिए।

- आश्रम की पुस्तक 'साधना में सफलता' से

एकादशी-माहात्म्य

[शयनी एकादशी : २० जुलाई २००२]

एकादशी व्रत की कथाएँ 'ऋषि प्रसाद' में पहले भी छप चुकी हैं। उसके बाद 'ऋषि प्रसाद' के लाखों नये पाठक बने हैं। उन्हें ध्यान में रखते हुए तथा पुराणों की स्मृति दिलाने हेतु यह कथा-माला फिर से शुरू कर रहे हैं :

युधिष्ठिर ने पूछा : भगवन् ! आषाढ़ के शुक्लपक्ष में कौन-सी एकादशी होती है ? उसका नाम और विधि क्या है ? यह बतलाने की कृपा करें।

भगवान श्रीकृष्ण बोले : राजन् ! आषाढ़ शुक्लपक्ष की एकादशी का नाम 'शयनी' है। मैं उसका वर्णन करता हूँ। वह महान पुण्यमयी, स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करनेवाली, सब पापों को हरनेवाली तथा उत्तम व्रत है। आषाढ़ शुक्लपक्ष में 'शयनी एकादशी' के दिन जिन्होंने कमल-पुष्प से कमललोचन भगवान विष्णु का पूजन तथा एकादशी का उत्तम व्रत किया है, उन्होंने तीनों लोकों और तीनों सनातन देवताओं का पूजन कर लिया। 'हरिशयनी एकादशी' के दिन मेरा एक स्वरूप राजा बलि के यहाँ रहता है और दूसरा क्षीरसागर में शेषनाग की शय्या पर तब तक शयन करता है, जब तक आगामी कार्तिक की एकादशी नहीं आ जाती, अतः आषाढ़ शुक्ल पक्ष की एकादशी से लेकर कार्तिक शुक्ल एकादशी तक मनुष्य को भलीभाँति धर्म का आचरण करना चाहिए। जो मनुष्य इस व्रत का अनुष्ठान करता है, वह परम गति को प्राप्त होता है, इस कारण यत्नपूर्वक इस एकादशी का व्रत करना चाहिए। एकादशी की रात में जागरण करके शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान विष्णु की भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिए। ऐसा करनेवाले पुरुष के पुण्य की गणना करने में चतुर्मुख ब्रह्माजी भी असमर्थ हैं। राजन् ! जो इस प्रकार भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले सर्वपापहारी एकादशी के उत्तम व्रत का पालन करता है, वह जाति का चाण्डाल होने पर भी संसार में सदा मेरा प्रिय करनेवाला है। जो मनुष्य दीपदान, पलाश के पत्ते पर भोजन और व्रत करते हुए चौमासा व्यतीत करते हैं, वे मेरे प्रिय हैं। चौमासे में भगवान विष्णु सोये रहते हैं, इसलिए मनुष्य को भूमि पर शयन करना चाहिए। सावन में साग, भादों में दही, क्वार में दूध और कार्तिक में दाल का त्याग कर देना चाहिए। जो चौमासे में ब्रह्मचर्य का पालन करता है, वह परम गति को प्राप्त होता है। राजन् ! एकादशी के व्रत से ही मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है, अतः सदा इसका व्रत करना चाहिए। कभी भूलना नहीं चाहिए। **गृहस्थी और परिश्रमी को शुक्लपक्ष की सभी एकादशी तथा 'शयनी' और 'बोधिनी' (चातुर्मास की) के बीच में जो कृष्णपक्ष की एकादशियाँ होती हैं, वे ही व्रत रखने योग्य हैं– अन्य मासों की कृष्णपक्षीय एकादशी गृहस्थ के रखने योग्य नहीं होती।**

['पद्मपुराण' से]

आध्यात्मिक ज्ञान प्रतियोगिता-२००२

'संत श्री आसारामजी एजूकेशनल एण्ड चेरिटेबल सोसायटी, दिल्ली' द्वारा आयोजित 'आध्यात्मिक ज्ञान प्रतियोगिता' में १,७६,२९५ विद्यार्थियों ने भाग लिया, जिसमें ६७,२६६ विद्यार्थी उत्तीर्ण हुए। वर्गानुसार प्रथम ५ विद्यार्थियों के नाम निम्न हैं :

क्र.सं.	रोल नं.	नाम	कक्षा	शहर	वर्ग
१.	११२०५०७७	प्रवीण (प्रथम)	४	वाराणसी	क
२.	१११४६७७८	गौरव (द्वितीय)	६	दिल्ली	क
३.	११२४३०१७	देवेन्द्र (प्रथम)	८	नागदा	ख
४.	११३७१४३८	दिनेश (द्वितीय)	८	रोहतक	ख
५.	१११०८३०९	ललित (प्रथम)	१२	दिल्ली	ग

कुल १२१३ विद्यार्थियों को पुरस्कृत किया जायेगा तथा परीक्षा में भाग लेनेवाले सभी विद्यार्थियों को 'प्रशस्ति पत्र' दिये जायेंगे। अन्य उत्तीर्ण विद्यार्थियों की जानकारी आश्रम के समाचार पत्र **'लोक कल्याण सेतु'** (जुलाई अंक) में और आश्रम की Web-site : www.ashram.org पर देख सकते हैं। पुरस्कार-वितरण 'गुरु पूर्णिमा महोत्सव स्थल' रजोकरी, दिल्ली में होगा। अन्य जानकारी के लिए सम्पर्क सूत्र :

'ऋषि प्रसाद कार्यालय', संत श्री आसारामजी आश्रम, दिल्ली। फोन : (०११) ५८६३५३२, ५८११७३३.

हृदयरोग

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार वर्ष २०२० तक भारत में पूरे विश्व की तुलना में सर्वाधिक हृदय के रोगी होंगे। हमारे देश में प्रत्येक वर्ष लगभग एक करोड़ लोगों को दिल का दौरा पड़ता है।

हृदय के रोगियों के लिए 'धन्वंतरि आरोग्य केन्द्र, संत श्री आसारामजी आश्रम, नई दिल्ली' से प्राप्त निर्देश यहाँ प्रकाशित कर रहे हैं। सम्बन्धित व्यक्ति इसका उपयोग कर स्वास्थ्य-लाभ अवश्य प्राप्त कर सकते हैं।

मोटापा, मधुमेह, किडनी, ब्लडप्रेशर, मानसिक तनाव, अतिपरिश्रम, मल-मूत्र की हाजत को रोकने तथा आहार-विहार में प्राकृतिक नियमों की अवहेलना से ही रक्त में वसा का प्रमाण बढ़ जाता है। अतः धमनियों में कोलेस्ट्रोल के थक्के जम जाते हैं, जिससे रक्त-प्रवाह का मार्ग तंग हो जाता है। धमनियाँ कड़ी और संकीर्ण हो जाती हैं।

हृदयरोगी को अपना उच्च-रक्तचाप व कोलेस्ट्रोल नियंत्रण में रखना चाहिए। नियंत्रण के लिए पूज्यश्री के द्वारा बताये गये किशमिश (काली द्राक्ष) व दालचीनी का प्रयोग निम्न तरीके से करना चाहिए :

(१) किशमिश : पहले दिन १ किशमिश रात को गुलाबजल में भिगोकर सुबह खाली पेट चबाकर खा लें, दूसरे दिन दो किशमिश खायें। इस तरह प्रतिदिन १ किशमिश बढ़ाते हुए २१वें दिन २१ किशमिश लें फिर १-१ किशमिश प्रतिदिन कम करते हुए २०, १९, १८ इस तरह से १ किशमिश तक आयें। यह प्रयोग करके थोड़े दिन छोड़ दें। तीन बार यह प्रयोग करने से उच्च रक्तचाप नियंत्रण में रहता है।

(२) दालचीनी : १०० मि.ली. पानी में २ ग्राम दालचीनी का पाउडर उबालें। ५० मि.ली. रहने पर ठंडा कर लें। उसमें आधा चम्मच (छोटा) शहद मिलाकर सुबह खाली पेट लें। यदि डायबिटीज भी हो तो शहद नहीं लें। यह प्रयोग तीन माह तक करने से रक्त में कोलेस्ट्रोल का प्रमाण नियंत्रण में रहता है।

आयुर्वैदिक उपचार :

अर्जुन छाल : २०० मि.ली. गाय के दूध में २०० मि.ली. पानी मिलाकर उसमें तीन ग्राम अर्जुन छाल का चूर्ण डालकर उबालें। २०० मि.ली. शेष रहने पर उतार लें। ठंडा होने पर सुबह खाली पेट व शाम को भोजन से पहले लें। इसे लेने के आधे घंटे बाद तक कुछ खायें नहीं। इस प्रयोग से हृदय की धड़कन नियंत्रित होती है तथा हृदय का दर्द दूर होता है और हृदय मजबूत बनता है।

नोट : यही अर्जुन छाल 'अर्जुन चाय' के नाम से समिति द्वारा उपलब्ध करायी जायेगी।

लहसुन : २ कली लहसुन रोजाना दिन में दो बार सेवन करें। लहसुन की चटनी भी ले सकते हैं। लहसुन हानिकारक बैक्टीरिया व जीवाणुओं को नष्ट करता है। इसमें निहित गंधक तत्त्व रक्त में कोलेस्ट्रोल को नियंत्रित करता है और उसके जमाव को रोकने में सहायक है।

पुनर्नवा : पुनर्नवा के सेवन से हृदयरोगी को फायदा होता है। (क्रमशः)

*

श्रावण में उपवास का महत्त्व

भारतीय संस्कृति में पर्व और त्यौहारों की बड़ी सुंदर व्यवस्था की गयी है। श्रावण मास में उपवास का महत्त्व अधिक है क्योंकि इस महीने में धरती पर सूर्य की किरणें कम पड़ती हैं जिससे पाचनतंत्र कमजोर होता है। अगर इन दिनों में अधिक भोजन किया जाय तो अपच और अजीर्ण हो सकता है,

जिसके फलस्वरूप बुखार आने की संभावना रहती है। इसीलिए श्रावण मास में एक बार खाने का विधान किया गया है।

अन्न में मादकता होती है। इसमें भी एक प्रकार का नशा होता है। भोजन के बाद आलस्य के रूप में इस नशे का प्रायः सभी लोग अनुभव करते हैं। पके हुए अन्न के नशे में एक प्रकार की पार्थिव शक्ति निहित होती है, जो पार्थिव शरीर का संयोग पाकर दुगनी हो जाती है। इस शक्ति को शास्त्रकारों ने 'आधिभौतिक शक्ति' कहा है।

इस शक्ति की प्रबलता से वह 'आध्यात्मिक शक्ति' जो हम पूजा-उपासना के माध्यम से एकत्र करना चाहते हैं, नष्ट हो जाती है। अतः भारतीय महर्षियों ने सम्पूर्ण आध्यात्मिक अनुष्ठानों में उपवास का प्रथम स्थान रखा है।

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।

गीता के अनुसार उपवास विषय-वासना से निवृत्ति का अचूक साधन है। अतः शरीर, इन्द्रियों और मन पर विजय पाने के लिए 'जितासन' और 'जिताहार' होने की परम आवश्यकता है।

'अर्ध रोगहरि निद्रा सर्व रोगहरि क्षुधा' के अनुसार आयुर्वेद तथा आज का विज्ञान - दोनों का एक ही निष्कर्ष है कि व्रत और उपवासों से जहाँ अनेक शारीरिक व्याधियाँ समूल नष्ट हो जाती हैं, वहीं मानसिक व्याधियों के शमन का भी यह एक अमोघ उपाय है। इसलिए भूख से थोड़ा कम खाने का और कभी-कभी उपवास करने का विधान है। उपवास अर्थात् पूरे दिन गुनगुने (न ठंडा न विशेष गर्म) पानी के सिवाय कुछ भी नहीं खायें-पियें।

१५ दिन में १ दिन एकादशी को व्रत रखना ही चाहिए। इससे आमाशय, यकृत और पाचनतंत्र को विश्राम मिलता है तथा उनकी स्वतः ही सफाई हो जाती है। इस प्रक्रिया से पाचनतंत्र मजबूत हो जाता है तथा व्यक्ति की आन्तरिक शक्ति, मानसिक शक्ति के साथ-साथ उसकी आयु भी बढ़ती है।

> गुरुभक्तियोग का अभ्यास आपको भय, अज्ञान, निराशावादी स्वभाव, मानसिक अशांति, रोग, निराशा, चिन्ता आदि से मुक्त होने में सहायभूत होता है।

मुसलिम महिला को प्राणदान

२७ सितंबर २००० को जयपुर में मेरे निवास पर पूज्य बापू का 'आत्म-साक्षात्कार दिवस' मनाया गया, जिसमें मेरे पड़ोस की मुसलिम महिला नाथी बहन पति श्री माँगू खाँ ने भी पूज्य बापू की आरती की और चरणामृत लिया।

३-४ दिन बाद ही वे मुसलिम दंपति ख्वाजा साहिब के उर्स में अजमेर चले गये। दिनांक ४ अक्टूबर २००० को अजमेर के उर्स में असामाजिक तत्त्वों ने प्रसाद में जहर बाँट दिया, जिससे उर्स मेले में आये कई दर्शनार्थी अस्वस्थ हो गये और कई मर भी गये।

मेरे पड़ोस की नाथी बहन ने भी वह प्रसाद खाया और थोड़ी देर में ही वह बेहोश हो गयी। अजमेर में उसका उपचार किया गया किंतु उसे होश न आया। दूसरे दिन ही उसके पति उसे अपने घर ले आये।

कॉलोनी के सभी निवासी उसकी हालत देखकर कह रहे थे कि अब उसका बचना मुश्किल है। मैं भी उसे देखने गया। वह बेहोश पड़ी थी। मैंने जोर-जोर से हरि ॐ... हरि ॐ... का उच्चारण किया तो वह थोड़ा हिलने लगी। मुझे प्रेरणा हुई और मैं पुनः घर गया। पूज्य बापू से उसको बचाने की प्रार्थना की। ३-४ घंटे बाद ही वह महिला ऐसे उठकर खड़ी हो गयी मानों, सोकर उठी हो।

उस महिला ने बताया कि मेरे चाचा ससुर पीर हैं और उन्होंने मेरे पति के मुँह से बोलकर बताया कि तुमने २७ सितम्बर २००० को जिनके सत्संग में पानी पीया था, उन्हीं सफेद दाढ़ीवाले बाबा ने तुम्हें बचाया है!

कैसी करुणा है गुरुदेव की!

- जे. एल. पुरोहित, ८७, सुल्तान नगर, जयपुर (राज.).

उस महिला का पता है :

- श्रीमती नाथी पत्नी श्री माँगू खाँ, १००, सुल्तान नगर, गुर्जर की धड़ी, न्यू सांगानेर रोड, जयपुर (राज.).

* संस्था समाचार *

देहरादून (उत्तरांचल) : दिनांक १५ से १७ जून तक पूज्यश्री ने उत्तरांचल के इस पर्वतीय क्षेत्र में ज्ञानगंगा बहायी। इससे पूर्व पूज्यपाद बापूजी हरिद्वार तथा टिहरी (हिमालय) में एकान्तवास में रहे।

पूज्यपाद बापूजी के यहाँ आगमन से ज्येष्ठ मास की तपती हुई धूप भी शीतल हो गयी। पूर्णाहुति के दिन तो तप्त पृथ्वी की प्यास बुझाने इन्द्रदेव भी बराबर बरसे।

अपने बहुमुखी सत्संग-प्रवचन में गीता, भागवत तथा वेदों के सूक्ष्म ज्ञान को ब्रह्मनिष्ठ बापू ने सहजवाणी में जनता के समक्ष रखा। मानव-जीवन में उपयोगी स्वास्थ्य, समता, साहस व सुहृदता सम्बन्धी पूज्यश्री की यह अमृतवाणी जिन्होंने रू-बरू सुनी वे धनभागी हैं और आप भी।

सृष्टिकर्त्ता के विधान को मंगलमय, परिपूर्ण तथा प्राणिमात्र की उन्नति का कारक बताते हुए पूज्यश्री ने कहा : ''ईश्वर की सत्ता-समर्थता का बयान कौन कर सकता है ? वह कब किस बड़ी-से-बड़ी महाशक्ति को दो-चार व्यक्तियों के द्वारा हराकर विफल साबित करवा दे कहा नहीं जा सकता। उस परमात्म-सत्ता की समर्थता के दृष्टांत सभीके आगे हैं। कहाँ तो महासत्ता अमेरिका, कोई देश उससे युद्ध करने का सोच नहीं सकता था, उसके आगे आँख उठाकर देख नहीं सकता था। अपने-आपको ऐसी महासत्ता के रूप में उभारनेवाला बेचारा अमेरिका लादेन के ३-४ आदमियों द्वारा 'वर्ल्ड ट्रेड मार्केट' के करोड़ों डॉलर का नुकसान करने पर व सैकड़ों जानें गँवाने पर भी एक व्यक्ति लादेन को जिंदा या मुर्दा न पकड़ सका ! अमेरिका के सहयोगी ४० देश, उनके गुप्तचर विभाग, उनकी फौजें और कहर बरसानेवाले बम - ये सब मिलकर भी लादेन को पकड़ने में सफल न हुए । कहाँ महाशक्तिसहित ४० देश और कहाँ एक लादेन ! क्या यह मानवी अहंकार को ईश्वरीय सत्ता की चुनौती नहीं है ? अफगानिस्तान को बमों से रफे-दफे करने के बाद भी लादेन नहीं मिला। परमेश्वर के इस सामर्थ्य को देखते हुए मानव को अहंकार व बाह्य साधनों की गुलामी छोड़कर परमात्म-सत्ता से अपना दिल जोड़ना चाहिए। लादेन जैसे अपराधी भी एकांत में उसकी शरण जाते हैं, प्रेरणा पाते हैं और बच निकलते हैं। कैसा है एकांत, मौन का प्रभाव तथा अंतर्मुख होना उस अल्ला, ईश्वर या गॉड में !''

जयपुर (राज.) २२ से २४ जून : सूर्य की प्रचण्ड रश्मि देह को तप्त कर रही थी लेकिन सद्गुरुदेव की आत्मस्पर्शी वाणी हृदय को शीतल व निर्मल भी कर रही थी। शरीर से पसीना बह रहा था, पर किसे सुधबुध थी उसे पोंछने की, ब्रह्मज्ञान का अमृत जो मिल रहा था, जिसे सुननेमात्र से हजारों कपिला गौ-दान करने का पुण्य प्राप्त होता है।

यहाँ विशाल पंडाल लगाया गया, जो पहले ही दिन छोटा पड़ गया। भक्तगण चिपक-चिपककर बैठे थे... कुछ लोग एकदम पीछे खड़े-खड़े प्रवचन सुनने में मशगूल थे... पर मातृहृदय बापू कहाँ माननेवाले थे ! समिति व सेवकों को उनके बैठने के लिए व्यवस्था बनाने का आदेश दिया और तुरन्त आज्ञा का पालन हुआ...

२४ जून-वटसावित्री पूर्णिमा, देवस्नान पूर्णिमा के दिन का आलम ही कुछ और था... देश-विदेश से आये पूनम व्रतधारियों का मेला... असुविधाओं के बीच में भी उनके चेहरों पर आनन्द, उल्लास और प्रभुमस्ती का माधुर्य छलक रहा था।

पूज्यपाद बापू ने यहाँ अपने प्यारों को भर-भर के ईश्वरीय मस्ती के जाम पिलाये।

कभी कीर्तन, कभी ध्यान, कभी ब्रह्मज्ञान, कभी व्यावहारिक सफलता की बातें तो कभी स्वास्थ्य के लिए हिदायतें... इस प्रकार बापूजी ने अपने ३ दिवसीय सत्संग-प्रवचन में इन्द्रधनुषी छटा बिखेरी। आनेवाली गुरुपूर्णिमा की विशाल भीड़ को मद्दे नज़र रखते हुए सद्गुरुदेव ने कहा : ''व्यासपूर्णिमा सब अपने-अपने घर पर मना लें। गुरुपूजन घर पर ही करें, फिर देखें, गुरुजी सबके घर आते हैं कि नहीं ? सूक्ष्म जगत में बहुत शक्ति है।''

ऊपर आपने पढ़ा जयपुर के कार्यक्रम का आँखों देखा हाल...

अमदावाद (गुज.) : जयपुर (राज.) में २४ जून की शाम तक 'पूर्णिमा दर्शन कार्यक्रम' चला और उसी शाम पूज्यश्री अमदावाद पधारे। २५ जून को यहाँ भी पूज्यश्री का पूर्णिमा दर्शन भक्तों को प्राप्त हुआ।

पूर्णिमा दर्शन का अवसर भक्तों के लिए एक ऐसा सुवर्ण अवसर होता है, जिसमें उन्हें पूज्यश्री के दर्शन-सान्निध्य के साथ ही उनकी अमृतवाणी द्वारा नित्य-नूतन ज्ञान की सुधा का अमृतपान, पुराने उत्तम साधकों से भेंट-चर्चा, पूज्यश्री द्वारा नयी-नयी सत्संग की किताबें, कैसेटें व जीवनोपयोगी सामग्री का विमोचन - ये सभी एक साथ मिल जाते हैं, मानों जीवन-वाटिका के सुंदर-सुवासित पुष्पों का गुच्छा।

यहाँ सत्संग में पूज्यश्री ने जीवन में ईश्वरप्राप्ति की जिज्ञासा व तड़प बढ़ाने तथा बुद्धि सूक्ष्म बनाने पर जोर दिया। उन्होंने सबकी बुद्धि-परीक्षा लेते हुए एक साखी बतायी :

माता मूये एक फल, पिता मुये फल चार।
भाई मुये हानि है, कहैं कबीर विचार॥

कबीरजी की ऊँची दृष्टि से इस साखी का क्या अर्थ हो सकता है यह विचारिये। जहाँ पूज्य बापूजी या श्री सुरेशानंदजी का सत्संग हो, वहाँ आश्रम के सत्साहित्य स्टॉल पर आपके लिए रखी गयी पेटी में उत्तर डालिये।

*

दीक्षित साधक खूब ध्यान दें
गुरुपूर्णिमा विषयक सूचना

साधकों की संख्या अधिक होने से अमदावाद में व्यवस्था लड़खड़ा जाती है। साधकों की संख्या बँट जाय इसलिए दिल्ली, भोपाल, मुंबई में भी गुरुपूनम देकर देखा है। एक उत्सव चार जगह मनाने व भीड़ बँट जाने पर भी आप लोगों की संख्या इतनी हो जाती है कि वैकुंठ (व्यवस्था) छोटा पड़ जाता है। वर्षाऋतु के पूरे यौवन में होने के कारण कभी भी बरसात आती है और व्यवस्था लड़खड़ाये बिना नहीं रहती। आप लोगों को दूर की मुसाफ़िरी की असुविधा न हो व अधिक किराया न लगे इस बात का खूब खयाल रखा जाता है। फिर भी आप असुविधा और दूरी की कठिनाइयाँ पैरों तले कुचलकर गुरुद्वार पर पहुँच जाते हो। इसके बदले में आप लोगों को धन्यवाद नहीं दूँगा बल्कि नाराज हो रहा हूँ। खबरदार! अगर इन बातों पर ध्यान नहीं दिया और भागा-भागी की, बारिश में गुरुपूनम के लिए अधिक संख्या की तो फिर यह उत्सव मनाना सदा के लिए बंद करना पड़ेगा। जितना समय-शक्ति आने-जाने में खर्च होती है वह एकांत में सद्‌गुरु से मानसिक सम्बन्ध जोड़कर एकलव्य की नाईं पूजा और प्रेरणा पाने में लगा दो। अपन सब गाते रहे हैं **'ध्यानमूलं गुरोर्मूर्ति पूजामूलं...'** अथवा क्या एकलव्य की कथा नहीं सुनी? एक बार गुरुदर्शन कर गुरुमूर्ति से ऐसा पाया कि अर्जुन भी देखता रह गया! आप भी अपने-अपने घर और नजदीक के आश्रम में 'गुरुपूर्णिमा उत्सव' सम्पन्न करें। बदले में शरदपूर्णिमा शिविर और गुरुपूर्णिमा उत्सव मिश्रित रूप में मनाया जायेगा और गुरुपूर्णिमा की कसर पूरी कर दी जायेगी। बारिश, अधिक संख्या, व्यवस्था लड़खड़ाना व आपकी असुविधा ध्यान में रखते हुए मुंबई और भोपाल में सारी तैयारियाँ करने की उत्सुक समितियों को भी इन्कार कर दिया है।

गुरुपूर्णिमा महोत्सव कार्यक्रम

(१). रजोकरी (दिल्ली) में : 12 से 14 जुलाई 2002, हरिजन बस्ती के पीछे, जयपुर-दिल्ली राजमार्ग के पास। संपर्क : (011) 5729338, 5764161. (२). इन्दौर (म.प्र.) में : 18 से 20 जुलाई 2002, खंडवा रोड, बिलावली तालाब के पास। संपर्क : (0731) 478031, 461198. (३). अमदावाद (गुज.) में : 22 से 25 जुलाई 2002, संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती। संपर्क : (079) 7505010, 7505011.

गुरुपूर्णिमा उत्सव हेतु इन जगहों पर आनेवालों को चीज-वस्तु, कपड़ा-लत्ता, फल-फूल आदि कुछ भी भेंट लाना सख्त मना है। प्रसाद लिया नहीं जायेगा। प्रसाद देने की यथोचित व्यवस्था की जायेगी। **– पूज्यश्री**

पथप्रदर्शक मानचित्र
गुरुपूर्णिमा महोत्सव स्थल,
रजोकरी, दिल्ली।
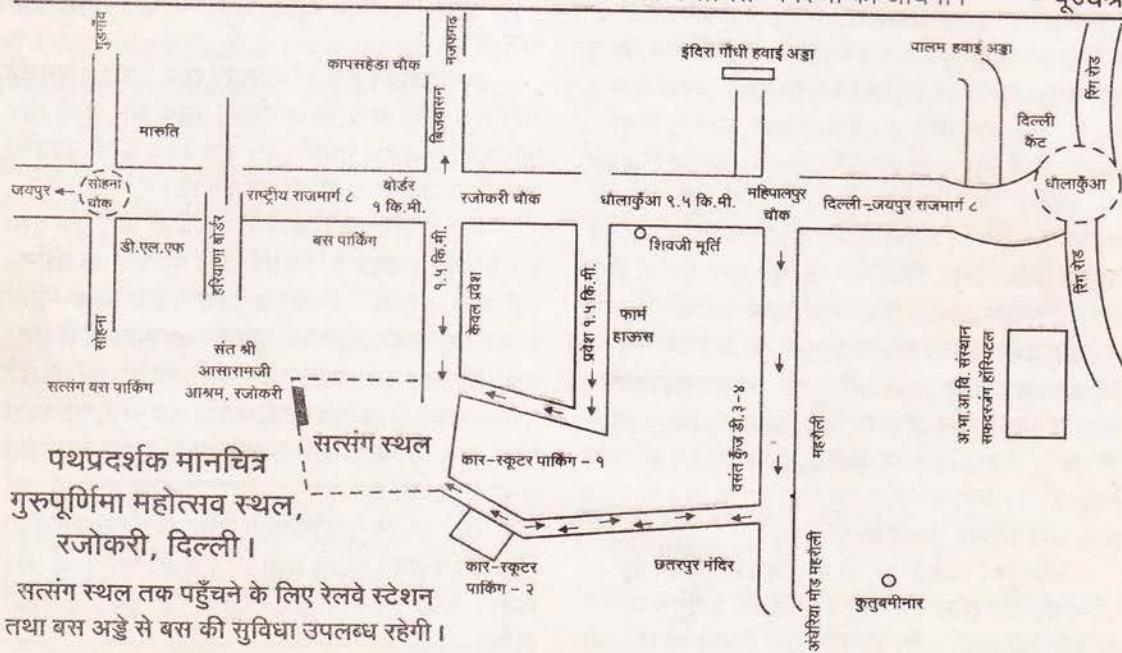
सत्संग स्थल तक पहुँचने के लिए रेलवे स्टेशन तथा बस अड्डे से बस की सुविधा उपलब्ध रहेगी।
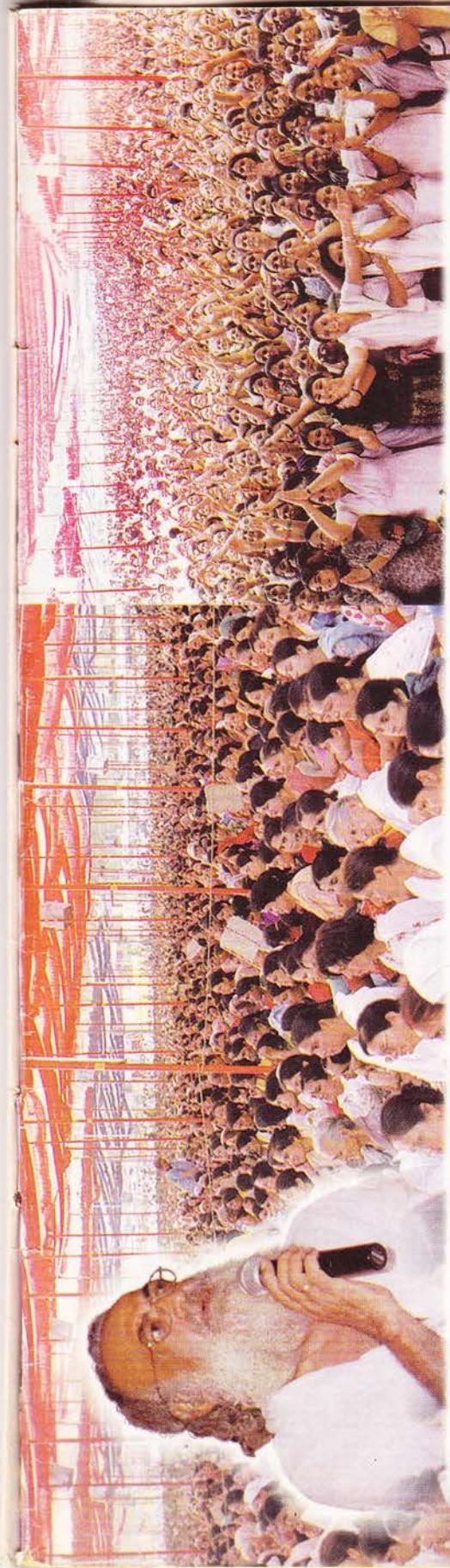
सुना था कि : ब्रह्मज्ञानी की नजरों में जो आते हैं वे नजरों से निहाल हो जाते हैं, किन्तु यहाँ पर 'प्रत्यक्षं किम् प्रमाणम्।'
बापूजी ! मैं बलि बलि जावाँ... ! कितना आनंद... कितना माधुर्य... कितनी शांति... ! देहरादून में भक्तों ने फकीरी प्यालियाँ भर-भर के पीं... !

संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित
वर्ष : १३
अंक : ११५
जुलाई २००२
आषाढ़ मास
विक्रम.सं. २०५९

॥ ऋषि प्रसाद ॥

हिन्दी

जुट चुके जो गुरुसेवा में निष्ठा और लगन से । भीतर बाहर उनको बचाते गुरुदेव हर विघ्न से ॥
गुरुदेव के दैवीकार्य में जो शिष्य डट जाते हैं । मिलती उनको गुरुकृपा, दुःख के पहाड़ हट जाते हैं ॥

गुरु वशिष्ठजी के श्रीचरणों में भगवान श्रीरामचंद्रजी ।

गुरुदेव के लिए शेरनी से दूध की याचना करते शिवाजी ।

मुनि विश्वामित्र के श्रीचरणों में श्रीराम और लक्ष्मण ।

शुकदेवजी के श्रीचरणों में राजा परीक्षित ।

सांदीपनि ऋषि के श्रीचरणों में भगवान श्रीकृष्ण ।